जैन भारती

जनवरी, 2011 • वर्ष 59 • अंक 1 • वार्षिक रु. 200.00

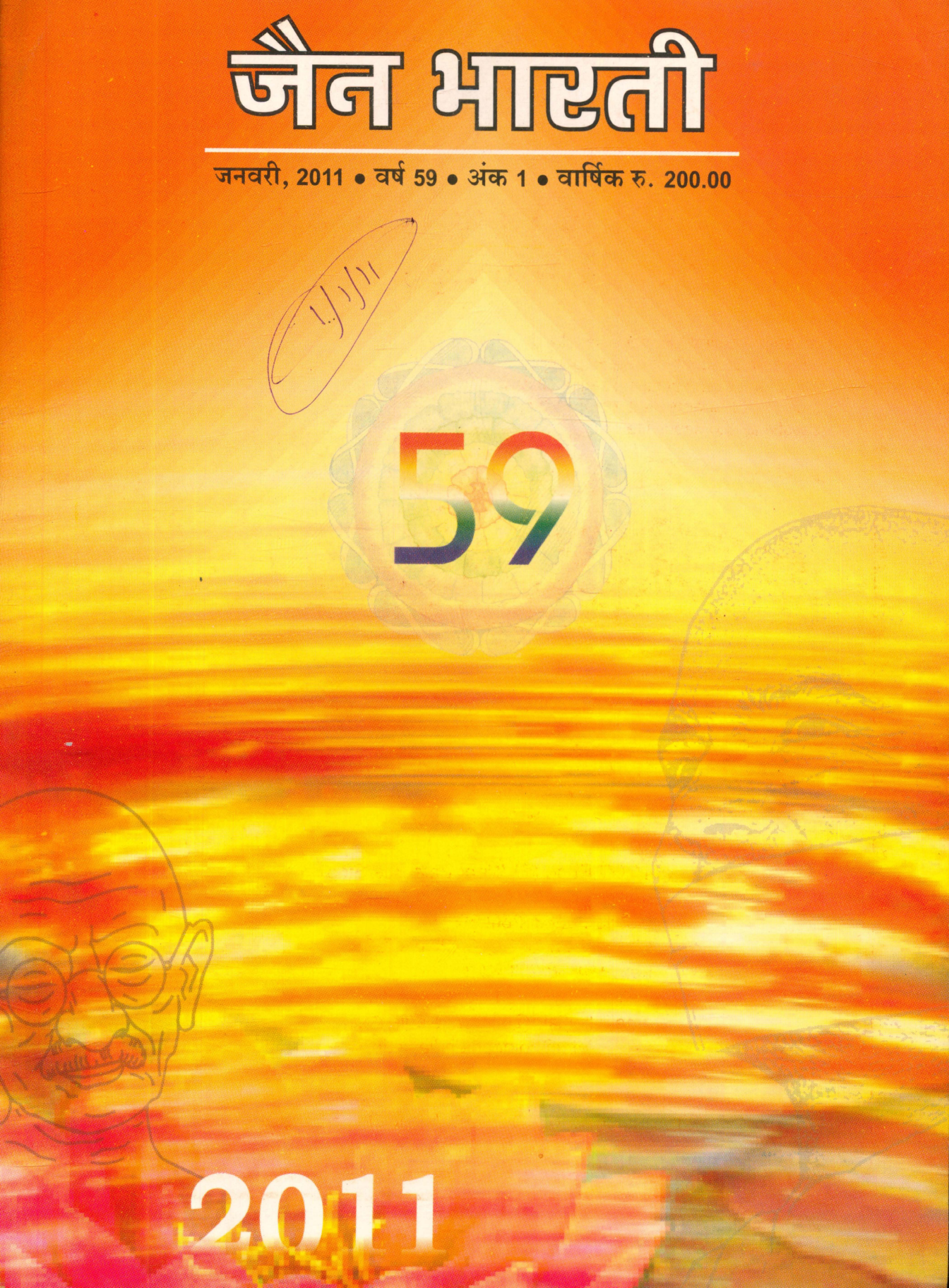

With best compliments from :

As a tribute to senior citizens, we offer Homeage

A Venture called "Homage" is taking shape on the bank of river Hooghly. The project aims at giving senior citizens a dignified, independent, comfortable, satisfying and happy life.

For booking get in touch with the following address

Homage
Care with a difference.

41 GT Road (E) (Near Bata Bus Stop)
Konnagar - 712235, Hooghly, West Bengal
Mobile : 09830280639
Ph : +91-33-26742862,22152798
Fax: +91-33-22151639
website: www.homeageindia.co.in
email: kolkata@homeageindia.co.in
info@homeageindia.co.in

Another contribution from Kundalia Foundation

शुभू पटवा
मानद संपादक
•
बच्छराज दूगड़
मानद सह-संपादक

जैन भारती

वर्ष 59 • जनवरी, 2011 • अंक 1

विमर्श

11
डॉ. राजानंद
सभ्यता और संस्कृति कालगत अजस्र प्रवाह

18
आचार्यश्री महाश्रमण
प्रतिरूपता : अनासक्ति की साधना

•

आवरण
गौरीशंकर

अनुभूति

23
आचार्यश्री महाप्रज्ञ
शक्ति हो, पर शक्ति का संयम भी हो

27
आचार्यश्री तुलसी
जनरुचि : उचित हो; हितकर हो

29
कहानी
नवनीता देवसेन
अरी बहन, अरी बहना!!

36
कविता
गिरिजाकुमार माथुर की कविताएं

प्रसंग

7
शुभू पटवा
सातत्य और परिवर्तन

शीलन

39
साध्वी डॉ. योगक्षेमप्रभा
कृष्णविवर क्या वास्तविक है

43
साध्वी मयंकप्रभा
अहिंसा : एक विकासोन्मुख कदम

46
बालकथा
शत्रुघ्नलाल शुक्ल
गउनियां का चमत्कार

संपादकीय पता : संपादक, जैन भारती, भीनासर 334403, बीकानेर • फोन : 0151-2270305, 2202505
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- रुपये • त्रैवार्षिक 500/- रुपये • दसवर्षीय 1500/- रुपये

तुम्हारी लेखनी बनाने का त्याग है

बचपन की बात है, भारमलजी स्वामी प्रतिलिपि करते थे, तब बार-बार लेखनी बनवाते (बरू की लेखनी चाकू से छील कर तैयार की जाती है, उसका मुंह घिसता है, तब उसे बार-बार छील कर बनाना होता है) रहते थे।

एक दिन भीखणजी स्वामी बोले—'तुम्हारी लेखनी बनाने का त्याग है।'

तब वे अपने आप बनाने लगे। ऐसा करते-करते वे लेखनी बनाने की कला में प्रवीण हो गए।

चलो, झंझट मिटा

किसी के बीमारी होती है, तब वह हाय! त्राहि करने लग जाता है। तब स्वामीजी बोले—'ऐसा नहीं करना चाहिए। बीमारी होने पर दृढ़ रहना चाहिए।'

'जैसे किसी के सिर पर ऋण था। वह ऋण चुकाना नहीं चाहता था, किंतु ऋणदाता ने शक्ति-प्रयोग से अपनी पूंजी वापस ले ली। तब मूर्ख आदमी तो विलाप करता है और समझदार होता है, वह सोचता है—'चलो, मेरा ऋण चुका। बाद में ही देना पड़ता, तो पहले ही झंझट मिटा, सिर का ऋण उतर गया।'

इसी प्रकार बीमारी होने पर जो सयाना होता है, वह सोचता है—'बंधे हुए कर्म भोग लिए, चलो झंझट समाप्त हुआ'। यह सोच वह विलाप नहीं करता।

ऐसा है साधु का मार्ग

स्वामीजी बोले—'यदि मृत मनुष्य किसी के काम आए तो साधु सांसारिक दृष्टि से किसी गृहस्थ के काम आए। साधु के पास कोई व्यक्ति आया। वह वहां पांच रुपये भूल गया। कोई दूसरा उन्हें उठा ले गया। साधु जानता है—वे रुपए 'क' के हैं और 'ख' उन्हें ले गया। 'क' आकर पूछता है—'यहां मेरे रुपए रह गए, उन्हें कौन ले गया?' साधु उसे नहीं बताता कि 'ख' ले गया। क्योंकि उनकी केवल धर्म सुनाने की ही साझेदारी है। बाकी सावद्य कार्यों की दृष्टि से साधु गृहस्थ के कोई काम नहीं आता। ऐसा है साधु का मार्ग!' ●

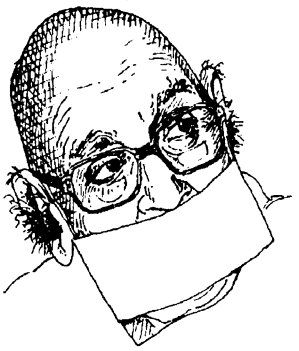

ज्ञान अपने आप में आत्मा की क्षायोपशमिक अवस्था है, फिर चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यों न हो। इस दृष्टि से विज्ञान अथवा अन्य किसी भी ज्ञान में कोई अंतर नहीं होता। आज जिस अर्थ में विज्ञान शब्द का प्रयोग हो रहा है, वह भी वस्तु-जगत को जानने की एक पद्धति-विशेष का नाम है। वह पद्धति प्रयोग के आधार पर चलती है। उसका कार्यक्षेत्र भौतिक जगत रहा है इसलिए विज्ञान को भी भौतिक मान लेते हैं। लेकिन वस्तुतः विज्ञान अपने में प्रयोगात्मक ज्ञान का नाम ही है।

अध्यात्म का विषय आत्म-जगत है। बाहरी जगत से ऊपर उठ कर वह भीतरी जगत पर विशेष ध्यान देता है। अध्यात्म की पद्धति भी प्रयोगात्मक ही है। जो केवल उपदेश है या कोरा आदर्श है, वह अध्यात्म नहीं है। अध्यात्म वह है जो उन आदर्शों को कसौटी पर परखता है।

यह सही है विज्ञान के विकास से मनुष्य को अनेक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां हुई हैं। वर्षों के अभ्यास, साधना और तपस्या से मिलने वाली वस्तुओं को उसने सर्व-सुलभ कर दिया है। तपस्या का फल तप करने वाले व्यक्ति तक ही सीमित होता है, जबकि विज्ञान ने अपने फल का उपभोग सबके लिए सुलभ कर दिया है। इसलिए लोगों की दृष्टि में उसका महत्त्व भी बढ़ा है। एक कठिन तपस्या के बाद पानी पर चल सकने वाले व्यक्ति की अपेक्षा साधारण आदमी के लिए नौका का महत्त्व अधिक होता है। किंतु, विज्ञान की यह पहुंच वस्तु-जगत तक ही सीमित है। वस्तु-जगत से ऊपर उठ कर आत्म-जगत तक वह अभी नहीं पहुंच पाया है।

—आचार्यश्री तुलसी

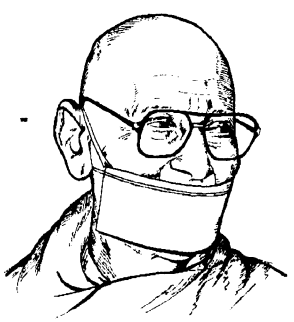

हृदय-परिवर्तन से हमारा तात्पर्य है निषेधात्मक भावों को समाप्त कर विधायक भावों को जगाना। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर दो धाराएं प्रवाहित होती हैं। एक है निषेधात्मक भावों की धारा और दूसरी है विधेयात्मक भावों की धारा। घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, राग—ये सारे निषेधात्मक भाव हैं। मैत्री, अहिंसा, सहिष्णुता, आर्जव, मार्दव—ये विधेयात्मक भाव हैं। ये दोनों धाराएं प्रत्येक आदमी में प्रवाहित रहती हैं।

हमारा कोई भी आचरण या व्यवहार आकस्मिक नहीं होता। किसी को गुस्सा आता है तो हम सोचते हैं कि यह आकस्मिक है। पर, कोई आवेश आकस्मिक नहीं आता। वह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। कोई घृणा करता है, वह आकस्मिक नहीं है। हमारे भीतर वे भाव निरंतर प्रवाहित हैं। उनकी धारा सतत चलती रहती है। निमित्त मिलने पर भाव प्रकट होते हैं। उनकी अभिव्यक्ति होती है, उत्पत्ति नहीं होती। वे मात्र अभिव्यक्त होते हैं, उत्पन्न नहीं होते। वे नए रूप से नहीं जनमते। वे जन्मे हुए ही हैं। निमित्त मिलता है और अभिव्यक्त हो जाते हैं।

किसी भी आचरण या व्यवहार की व्याख्या आचरण और व्यवहार के स्वरूप के आधार पर नहीं की जा सकती, भावधारा के आधार पर की जा सकती है। आचरण से हमें पता चल जाता है कि व्यक्ति में किस प्रकार की भावधारा प्रवाहित हो रही है। जो व्यक्ति क्षण-क्षण में क्रोध करता है, उत्तेजित होता है, भयभीत होता है, अहंकार-ग्रस्त होता है तो मान लेना चाहिए कि उसमें उस समय निषेधात्मक भावधारा प्रवाहित हो रही है और वह व्यक्ति उसी के प्रवाह में प्रवाहित होकर इन आवेशों से आविष्ट हो रहा है। कोई आदमी सहिष्णु है, क्षमाशील और विनयी है, अनुशासित और अहंकारशून्य है, मैत्री और प्रेम से परिपूर्ण है तो मान लेना चाहिए कि उसमें उस समय विधायक भावधारा बह रही है।

—आचार्यश्री महाप्रज्ञ

जो व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को प्राप्त करना चाहता है, उसके लिए तप परम औषधि है। यदि स्वाद्य-संयम, उपवास या सामर्थ्यानुसार तपस्या का अवलंबन लिया जाता है तो व्यक्ति स्वस्थ जीवन जी सकता है। तपस्या यदि शरीर के अनुकूल पड़ जाए तो बाह्य और आंतरिक, दोनों दृष्टियों से हितकर होती है। तप की उपयोगिता निर्विवाद होने के बावजूद भी हर व्यक्ति इसका आलंबन नहीं ले सकता। तप के लिए स्वाद्य पदार्थों की अनासक्ति तो अनिवार्य है ही, साथ में वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशम भी आवश्यक है। वैसे तो स्वाद्य-संयम हर व्यक्ति के लिए जरूरी है, किंतु वृद्ध व्यक्ति के लिए तो उसकी और अधिक अनिवार्यता है। खान-पान का संयम न होने से अनेक प्रकार की शारीरिक बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। फिर उन्हें दूसरों की सेवा व श्रम लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसलिए अवस्था-प्राप्त व्यक्तियों को ऊनोदरी, द्रव्यों की सीमा, कई घंटों का प्रत्याख्यान आदि अनेक प्रयोगों के द्वारा स्वाद्य-संयम का अभ्यास करना चाहिए।

हर व्यक्ति शांति से जीना चाहता है। क्रोध शांति का बाधक तत्त्व है। कुछ व्यक्ति वृद्धावस्था में चिड़चिड़े स्वभाव वाले हो जाते हैं। उन्हें बात-बात में गुस्सा आ जाता है। सक्षम व्यक्ति का गुस्सा तो फिर भी बर्दाश्त कर लिया जाता है, किंतु जो व्यक्ति अक्षम हो गए अथवा सर्वथा दूसरों पर निर्भर हो गए—वे यदि अधिक बोलें, गुस्सा करें, बार-बार टोकें तो वे अपने ही लोगों के बीच अप्रिय बन जाते हैं, उपेक्षा के पात्र बन जाते हैं। इससे वे स्वयं भी अशांत रहने लगते हैं तथा दूसरों की शांति को भंग करने में भी निमित्त बनते हैं। संभव है उनकी बात कोई ध्यान से न सुने, सेवा भी जागरूकतापूर्वक न करे, फिर भी ऐसे प्रसंगों में व्यक्ति अपनी प्रसन्नता को बनाए रखे। यदि वृद्धावस्था प्राप्त व्यक्ति उपशम-भाव का विकास करे और समता से जीवन जीए तो वह स्वयं प्रसन्न रह सकता है तथा औरों को भी आनंदित कर सकता है।

वृद्धावस्था में सेवा लेनी आवश्यक होती है, किंतु चिंतन यह रहे कि मैं कम से कम सेवा लूं। जो काम व्यक्ति स्वयं कर सकता है वह काम दूसरों से क्यों कराए? कुछ काम ऐसे होते हैं जिन्हें वृद्ध व्यक्ति नहीं कर सकते, किंतु कुछ कार्य ऐसे भी होते हैं जिन्हें अवस्था-प्राप्त व्यक्ति भी कर सकते हैं और वैसा करके वे परिवार व समाज के लिए बहुत उपयोगी बन सकते हैं।

गुरुदेव तुलसी अवस्था से नौवें दशक में प्रवेश कर चुके थे, किंतु उनके मन पर बुढ़ापा कभी हावी नहीं हुआ। वे उस अवस्था में भी एक युवक की तरह प्रतिदिन अठारह घंटे तक श्रम करते थे। वे श्रम को ही जीवन मानते थे। उनका मानना था कि बुढ़ापा आदमी के मन में नहीं उतरना चाहिए। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की सक्रियता, श्रमशीलता और जागरूकता भी सबके लिए अनुकरणीय है।

जप, तप, उपशम व श्रम—इन उपायों का सहारा लेने वाला व्यक्ति अपने बुढ़ापे को बहुत अच्छे ढंग से जी सकता है। इससे जीवन में अध्यात्म का अवतरण हो सकता है, आदमी सुख और शांतिपूर्ण जीवन जी सकता है।

—आचार्यश्री महाश्रमण

प्रसंग

सातत्य और परिवर्तन

सातत्य और परिवर्तन क्या एक ही सिक्के के दो पहलू नहीं हैं? यदि हम सातत्य का अर्थ निरंतरता या गतिशीलता के रूप में मानें—जो कि है ही—तो परिवर्तन भी सातत्य के साथ-साथ चल रहा है, यह मानना होगा। जो गतिशील है, परिवर्तनशील है—वहीं तो सातत्य के दर्शन हो सकते हैं। इसलिए कहना चाहिए कि सातत्य और परिवर्तन एक ही है। इस दृष्टि से सातत्य का अर्थ निरंतर चलने वाली एक प्रक्रिया है। अतः सातत्य की बात जब भी आती है, तो यह समझ लेना चाहिए कि उसमें गतिशीलता अथवा परिवर्तनशीलता स्वतः निहित है। बेशक वह निरंतरता से असंपृक्त नहीं हो सकता है।

जड़ता और सातत्य—ये दो भिन्न छोर हैं। संस्कृति और परंपरा को लेकर जब इस दृष्टि से बात होती है, तो काफी घालमेल कर दिया जाता है और जन सामान्य को भरसक भ्रमित करने की कोशिश भी की जाती है। बहुत से लोग, जो अंतर्निहित मंशा को भांप नहीं पाते, वे भ्रमित भी हो जाते हैं और ऐसे बहुत से लोग जो एकदम बहाव में नहीं आते, वे भ्रमित भले न हों, पर विभ्रम में अवश्य फंस जाते हैं।

आज हमारे देश की लगभग यही दशा है। वह भ्रम और विभ्रम में गोते लगा रहा है। देश की मनीषा इस दृष्टि से बंटी हुई है और दोनों ओर से एक जाल फैला हुआ है। कहना चाहिए कि यह जाल इसी मनीषा का है। यह मनीषा अपने निहित वैचारिक उद्देश्य के चलते भ्रम और विभ्रम के वातायन खोलने में निरंतर सक्रिय है।

भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू एक जगह कहते भी हैं—'भारत के समग्र इतिहास में हम दो परस्पर विरोधी और प्रतिद्वंद्वी शक्तियों को काम करते देखते हैं। एक तो वह शक्ति है, जो बाहरी उपकरणों को पचा कर समन्वय और सामंजस्य पैदा करने की कोशिश करती है और दूसरी वह जो विभाजन को प्रोत्साहन देती है, जो एक बात को दूसरी से अलग करने की प्रवृत्ति को बढ़ाती है। इसी समस्या का एक भिन्न प्रसंग में हम मुकाबिला कर रहे हैं। आज भी कितनी ही बलिष्ठ शक्तियां हैं, जो केवल राजनीतिक ही नहीं, सांस्कृतिक एकता के लिए भी प्रयास कर रही हैं। लेकिन, ऐसी ताकतें भी हैं, जो जीवन में विच्छेद डालती हैं, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद-भाव को बढ़ावा देती हैं।'—यह कहने के साथ ही पंडित नेहरू यहीं पर आगे यह भी कहते हैं—'अतएव, आज हमारे सामने जो प्रश्न है, वह केवल सैद्धांतिक ही नहीं, उसका संबंध हमारे जीवन की सारी प्रक्रिया से है और उसके समुचित निदान और समाधान पर ही हमारा भविष्य निर्भर करता है। साधारणतः ऐसी समस्याओं को सुलझाने में नेतृत्व देने का काम मनीषी करते हैं, किंतु वे हमारे काम नहीं आए। उनमें से कुछ तो ऐसे हैं, जो इस समस्या के स्वरूप को ही नहीं समझते। बाकी लोग हार मान बैठे हैं, वे विफलता-बोध से पीड़ित तथा आत्मा के संकट से ग्रस्त हैं और वे जानते ही नहीं कि जिंदगी को किस दिशा की ओर मोड़ना ठीक होगा।'

पंडित जवाहरलाल नेहरू का यह कथन (30 सितंबर, 1955) तब का है, जब वे स्वयं प्रधानमंत्री थे। सत्ता की बागडोर न केवल उनके हाथों में थी, बल्कि वे इसे अपने मन मुताबिक घूमा-चला सकने की सामर्थ्य भी रखते थे। उनकी केवल राजनीतिक हैसियत भर नहीं थी और वे मात्र प्रधानमंत्री ही नहीं थे, अपितु ऐसे मनीषी भी थे, जो ऐसी समस्याओं (उनके उपरोक्त कथनानुसार) को सुलझाने में नेतृत्व देने का काम भी कर सकते थे। कहने का तात्पर्य यह कि पंडित नेहरू प्रधानमंत्री के रूप में जहां राजनीतिक नेतृत्व देने में सक्षम थे, वहीं एक मनीषी के रूप में भी वैसा नेतृत्व वे दे सकते थे, जिसकी अपेक्षा वे मनीषी जनों से करते थे। वे दे सके, अथवा नहीं दे सके—यह जग जाहिर है। तो क्या यह माना जाए कि वे भी विफलता-बोध से पीड़ित थे? ये बातें हम उन विचारकों पर छोड़ दें जो आज भी सातत्य की साधना में रत हैं। पर, इतना तो मानना ही होगा कि हमारे राजनीतिक नेतृत्व को यह रंज रहा है कि देश की मनीषा ऐसा नेतृत्व नहीं दे पाई जिसकी उससे सहज अपेक्षा थी।

यह कहते हुए हमें यह भी मानना होगा कि हमारे राजनीतिक नेतृत्व की ओर से भी इस तरफ कोई ईमानदार चेष्टा नहीं हुई। अनेक विद्या संस्थान या ऐसे संगठन अवश्य खड़े हुए जो हमारे जीवन की सारी प्रक्रिया और ऐसे समाधान व समुचित निदान के लिए प्रतिबद्ध माने गए। पर, उनमें जो लोग स्थापित हुए, उनकी मेधा और वैचारिक धार या तो कुंद थी या धीरे-धीरे कुंद होती चली गई और राजनीतिक नेतृत्व ऐसा ही होना-करना-देखना चाहता था। यह दुर्भाग्य ही था, पर ऐसा ही हुआ और हमारा राजनीतिक नेतृत्व आज तक इसमें सफल ही हुआ जा रहा है। एक वर्ग राजनीतिक नेतृत्व की इस चाल को समझता है, पर वह असहाय है। पंडित नेहरू की भाषा में यह भी कह सकते हैं कि—'वह हार मान बैठा है।'—पर, हम मानते हैं कि वह असहाय तो है, लेकिन हार नहीं मानी है। इसीलिए आज भी आवाज उठती है और असंख्य कानों तक उसकी अनुगूंज जाती भी है। तब भी वह 'नक्कारखाने में तूति' की मानिंद ही है। बेशक यह उम्मीद समाप्त नहीं हुई है कि—'दस्तकों का किवाड़ों पर असर होगा जरूर/हर हथेली खून से तर और ज्यादा बेकरार'—इस बेकरारी को मकसद में बदलने की जरूरत है।

यह कैसे बदल सकते हैं—एक बड़ा सवाल है। इस सवाल के उत्तर की उम्मीद हम शिक्षा से जुड़े लोगों में देख सकते हैं। वे साधु-संन्यासी, जो अपनी साधना में लीन रहते हुए समाज के प्रति फिक्रमंद हैं—उनसे भी हम एक उम्मीद कर सकते हैं। आखिरकार संत वही तो है—जिसे 'सीकरी' से कोई काम नहीं—'संतन को का सीकरी सों काम'—ऐसे साधु-संन्यासी अभी भी समाज में बचे हैं। अभी हाल में आचार्यश्री महाश्रमणजी के पद-विहार के दौरान एक साधु ने इस लेखक को बताया कि—'हमारे हाथ किसी के सम्मुख पसरें क्यों, खुलें क्यों? हमें किसी से कुछ लेना नहीं तो दोनों हाथ बगलों में बंद क्यों न रहें?'—ऐसे ही साधु-संतों से उस परिवर्तन की उम्मीद की जा सकती है, जिस ओर इस 'प्रसंग' में संकेत है।

और, गांधी के बाद इस दिशा में एक बड़ा प्रयत्न आचार्यश्री तुलसी ने किया। महात्मा गांधी के चले जाने के तुरंत बाद 'अणुव्रत आंदोलन' के माध्यम से समाज को दिशा देने का महती काम शुरू हुआ। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने देश के संविधान लागू होने के पांच साल बाद सन् 1955 में जिस तरह के समन्वय, सामंजस्य और सांस्कृतिक एकता की बात कही—सन् 1949 में आचार्यश्री तुलसी ने 'अणुव्रत आंदोलन' के माध्यम से इन बातों को मुखरित किया। फिर कालांतर में जीवन-विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के माध्यम से शिक्षा जगत को भी एक महत्त्वपूर्ण अवदान दिया।

इन अवदानों का असर समाज पर कितना है, इस पर गौर करने के साथ-साथ यह देखना भी अब अत्यंत लाजिमी है कि हमारा राजनीतिक नेतृत्व ऐसी समन्वयकारी और जीवन की संपूर्ण प्रक्रियाओं से जुड़ी इन बातों से कितना संपृक्त है। किसी मनीषा को संकीर्णता के दायरों में रखना सरल तो है, पर मुनासिब नहीं है।

अतः जो मुनासिब है, हमारा राजनीतिक नेतृत्व उस ओर पग उठाने का अब साहस करे तब यह लगेगा कि विफलता-बोध या आत्मा के संकट से मुक्त मनीषा भी इस देश में विद्यमान है। वे अपने आत्म-बोध से गतिशील हैं और सातत्य के लिए सदा तत्पर हैं। भारत के इस गणतंत्र दिवस (26 जनवरी) पर राजनीतिक नेतृत्व से यह अपेक्षा स्वाभाविक है कि वह संकीर्णता के दायरों से अपने को मुक्त कर उस मनीषा के अवदानों को जीवन की प्रक्रिया से जोड़ने के कदम उठाएगा—जिनकी अब जरूरत है।

— शुभू पटवा

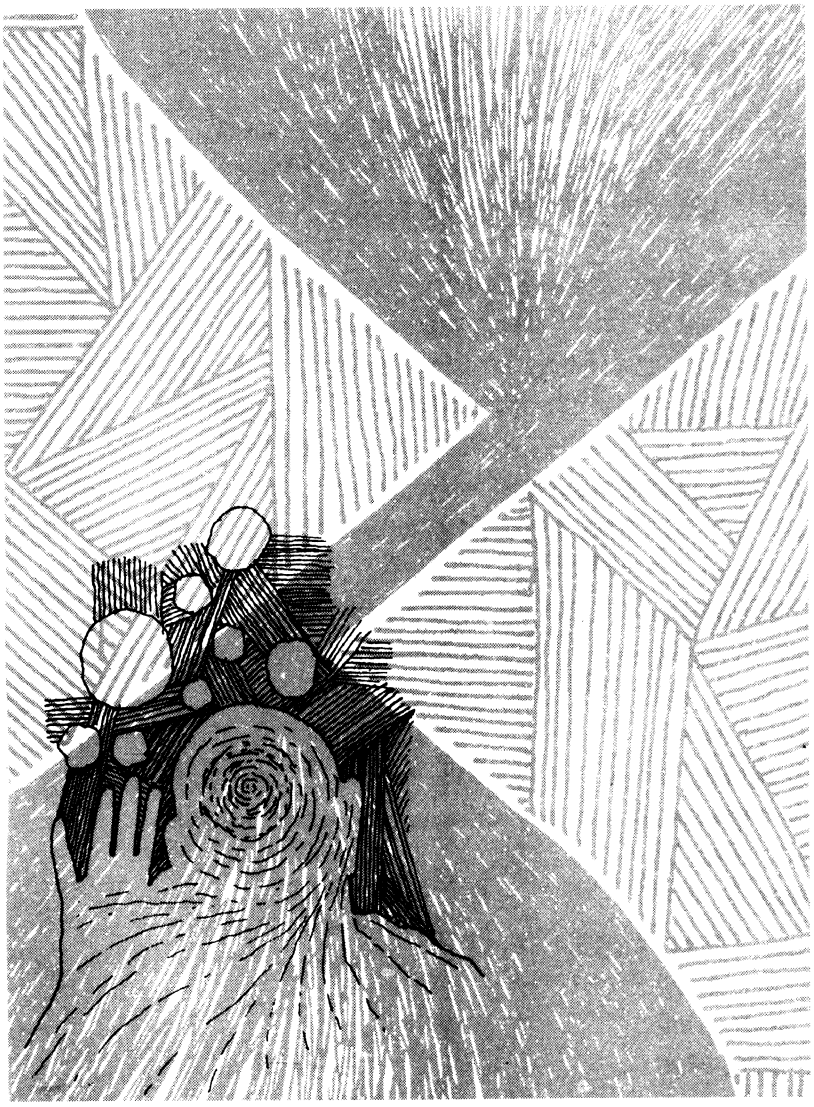

विमर्श

भारत के समग्र इतिहास में हम दो परस्पर विरोधी और प्रतिद्वंद्वी शक्तियों को काम करते देखते हैं। एक तो वह शक्ति है जो बाहरी उपकरणों को पचाकर समन्वय और सामंजस्य पैदा करने की कोशिश करती है और दूसरी वह जो विभाजन को प्रोत्साहन देती है, जो एक बात को दूसरी से अलग करने की प्रवृत्ति को बढ़ाती है। इसी समस्या का, एक भिन्न प्रसंग में, हम आज भी मुकाबला कर रहे हैं। आज भी कितनी ही बलिष्ठ शक्तियां हैं जो केवल राजनीतिक ही नहीं, सांस्कृतिक एकता के लिए भी प्रयास कर रही हैं। लेकिन, ऐसी ताकतें भी हैं जो जीवन में विच्छेद डालती हैं, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद-भाव को बढ़ावा देती हैं।

अतएव, आज हमारे सामने जो प्रश्न है वह केवल सैद्धांतिक नहीं है, उसका संबंध हमारे जीवन की सारी प्रक्रिया से है और उसके समुचित निदान और समाधान पर ही हमारा भविष्य निर्भर करता है। साधारणतः, ऐसी समस्याओं को सुलझाने में नेतृत्व देने का काम मनीषी करते हैं, किंतु वे हमारे काम नहीं आए। उनमें से कुछ तो ऐसे हैं, जो इस समस्या के स्वरूप को ही नहीं समझते। बाकी लोग हार मान बैठे हैं, वे विफलता बोध से पीड़ित तथा आत्मा के संकट से ग्रस्त हैं और वे जानते ही नहीं कि जिंदगी को किस दिशा की ओर मोड़ना ठीक होगा।

—जवाहरलाल नेहरू

[भारत के गणतंत्र दिवस (26 जनवरी) का स्मरण करते हुए]

❑❑

सभ्यता का संबंध जितना व्यक्ति से है उतना ही समाज से है और यह कालसापेक्ष है। किसी अमुक काल में सामान्य सामाजिक स्थिति कैसी है? संस्थागत व्यवस्थाएं कैसी हैं? व्यक्तियों का सामूहिक जीवन किस तरह से चलता है? उनके आजीविका के साधन क्या हैं? उनकी रुचियां मुख्य रूप से किस तरफ रुझान रखती हैं? कलाओं की अभिव्यक्ति में विशिष्टता क्या है? उनकी व्यावहारिक मान्यताएं तथा धार्मिक आस्थाएं क्या हैं? यह सब सभ्यता के अंतर्गत सम्मिलित रहता है। इसमें यह भी जाना जा सकता है कि अपने से पूर्व की सभ्यता से क्या-कुछ लिया और स्वयं अपनी बौद्धिक तथा रचनात्मक क्षमता से किस दिशा में और कितने स्तरों पर नव्यता जोड़ी?

हमें यह मानना चाहिए कि जिस प्रकार भौतिक प्रकृति और सृष्टि अपनी परिवर्तनशीलता को बनाए हुए कालगत अजस्र प्रवाह की निरंतरता (सनातनता) में गतिशील है, उसी तरह मानवीय एवं विशिष्ट क्षेत्रों की मनुष्यों की संस्कृति व सभ्यता भी परिवर्तनशीलता की क्रमिकता बनाए रख कर प्रवाहमयी रहती है।

सभ्यता और संस्कृति : कालगत अजस्र प्रवाह

डॉ. राजानंद

सभ्यता का मानक क्या हो? क्या यह मानक समान हो सकता है, पूरे समाज के लिए? सभ्यता को सभा शब्द से जोड़ा गया है और संस्कृति को संस्कार से। संस्कारों का धारक अंतःकरण है, अतः व्यक्ति में निर्णायक तत्त्व अंतःकरण ही है।

सभ्यता को वास्तव में बाहरी व्यवहार से जाना जाता है। इसका आधार या आंतरिक बुनावट संस्कृति-पक्ष से होती है, लेकिन यह दिक्-काल-सापेक्ष होने के कारण स्थान तथा समय में जो भौतिक तथा मनुष्य के प्रयासों से परिवर्तन घटित होते हैं, उनकी वजह से बदलाव लेती है। बदलाव की (आए हुए बदलाव की) पुनरावृत्ति तथा जीवनशैली की अभ्यस्तता दीर्घकाल में संस्कृति को भी प्रभावित करती है। क्योंकि अंतःकरण इसके माध्यम से क्षुब्धता अनुभव करते हुए अपनी सांस्कारिक निर्मिति में परिवर्तन (रूपांतरण) लाकर अपनी सहज समरसता को प्राप्त करना चाहता है। समरसता प्राप्ति का यह प्रयास द्वंद्व तथा मंथनसापेक्ष है।

संस्कृति का कर्ता-धर्ता व्यावहारिक रूप में अंतःकरण ही है, जो उचित तथा नैतिक संकेतों का पालन करता है, क्योंकि संस्कृति मूल्यपरक व नैतिक होती है। चूंकि संसार व समाज की बहुआयामी मांगें और उनके दबाव होते हैं, इसलिए नैतिकता के भी स्तर हो जाते हैं। अपने यहां इसे 'धर्म', 'कर्तव्य', 'मर्यादा' जैसे शब्दों से संयुक्त किया गया है।

किसी भी देश का समाज कभी भी वर्गरहित नहीं रहा। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक संगठन या धार्मिक समुदाय वर्गों में बंटे रहते हैं, लेकिन सभ्यता का मानक हमेशा भद्र तथा संपन्न अथवा वर्चस्वशाली वर्ग की सोच,

उसकी जीवनशैली को माना गया है। उदाहरण के तौर पर स्वामी वर्ग को सभ्यता का धारक माना, दासों को असभ्य। दरबारी वर्ग की जीवनशैली को सभ्यता का उदाहरण माना, आमजन को उनका अनुसरणकर्ता। नगरीय सभ्यता को सभ्यता गिना गया, जबकि ग्रामीण सभ्यता को सभ्यता न मान कर उसको (ग्रामीण वर्ग को) गंवार तथा अशिष्ट माना जाता रहा।

सभ्यता की इस भिन्नता के कुछ सामान्य तत्त्व भी रहे हैं जो किसी विशिष्ट देश के विशिष्ट समय में समानता के द्योतक रहे। संसार की वास्तविकता भिन्नता में है और मनुष्य के संदर्भ में तो और भी अधिक रंगतों वाली। लेकिन, अगर ऐतिहासिकता के नजरिए से देखें तो विकास के सोपान विश्व इतिहास में एकरूपता लिए हुए गुजरे हैं। इसे हमने वैश्विक मानवीय सभ्यता की तरह जाना है।

आदर्शवादी आध्यात्मिक चिंतन तथा प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक चिंतन में बुनियादी अंतर मनुष्य तथा सृष्टि को लेकर है और विशेषता यह है कि ज्ञान का यह चक्रव्यूह अथवा भिन्नता का गोरखधंधा मनुष्य के ही अथक प्रयासों का नतीजा है। आदर्शवादी चिंतन मनुष्य को परमात्मा का स्वरूप मानता है तथा इसे जन्मजात नैतिक बतलाता है। यह ब्रह्मांड के स्रष्टा और नियंता को अलौकिक शक्ति द्वारा संचालित मानते हैं। इसके विरुद्ध प्रत्यक्षवादी (भौतिकवादी) मानवीय विकास तथा मानव को भौतिक तत्त्वों के रूप में देखते हैं। ये किसी अलौकिक शक्ति को नहीं मानते। पृथ्वी का होना, इस पर जीव-जंतु का होना तथा इसके बाद के समूचे क्रमिक विकास में वातावरण की प्रमुख भूमिका मानते हैं।

एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि क्या संस्कृति तथा सभ्यता का विकास समानांतर होता है या पहले सभ्यता और फिर संस्कृति अपना स्थाई स्वरूप लेती है?

मुख्य रूप से चार्ल्स डार्विन (1809-1882 ई.) और वेलेस (1883-1913 ई.) को विकासवाद का प्रवर्तक माना जाता है। परंतु, इस संकल्पना का ईसवी पूर्व 640-546 में थेल्स द्वारा आरंभ हुआ था। उसका मानना था कि सब जीवों का जन्म जल से हुआ है। एनेक्जिमैडर ने माना कि धरती आरंभ में द्रव थी, सूखने पर उसने जीवों को जन्म दिया। मनुष्य का जन्म सबसे पहले हुआ।

ऐंपिडोक्लीस के अनुसार सृष्टि का उदय धरती, वायु, अग्नि और जल तत्त्वों से हुआ है। घृणा और प्रेम की शक्तियों के प्रभाव से उनमें संयोग-वियोग हुआ और सर्वप्रथम वृक्षों का और वृक्षों से अन्य जीवों का उदय हुआ। लामार्क (1744-1829 ई.) ने विकासवाद की भूमिका बनाई। ज्यादातर चिंतन इस विषय पर हुआ है कि विकास किस रीति से हुआ है तथा किस सिद्धांत के अनुसार।

> प्रदेश के प्रमुख साहित्य-सर्जक डॉ. राजानंद (15 अगस्त, 1931) साहित्य, संगीत एवं कला के क्षेत्र में गहरी रुचि रखने वालों में से एक हैं। कथा, उपन्यास, नाटक, कविता और समालोचना की दर्जनों पुस्तकों के रचनाकार डॉ. राजानंद की दर्शन-जगत में भी गहरी रुचि है। गांधी-दर्शन, शिक्षा, परंपरा और संस्कृति पर आपकी वैचारिक-दृष्टि को सर्वत्र सराहना मिली है। अनेक पुरस्कारों से समादृत डॉ. राजानंद उम्र के आठवें-नौवें दशक में भी चिंतन व लेखन में पूर्ण सजग-सक्रिय हैं।

डार्विन ने कहा—जीवन के लिए प्रकृति से संघर्ष करते हुए, जो अपने में बदलाव ला सके, वे जीवित रहे। जो 'जाति' परिवेश के अनुकूल नहीं बन सकी, वह लुप्त हो गई।

वैज्ञानिक आधार पर मनुष्य की परिभाषा इस प्रकार होगी—मानव एक कशेरुकी (वर्टिबरेट), जरायुज स्तनी (प्लेसेंटल मेमल) तथा प्राइमेट प्राणी है। इसको होमोसेपियेंस अर्थात् 'बुद्धिवाला-प्राणी' कहा गया है।

मानव जैसे कपियों से आदिमानव का विकास एक करोड़ तीस लाख वर्ष पूर्व हुआ। जीवाश्मों के आधार पर मायोसीन युग के अंत से प्लायोसीन युग के आरंभ का है। दस लाख वर्ष में कपि-मानव की जगह नए प्रकार का आदिमानव विकसित हुआ। इनके हाथ-पैर और मस्तिष्क अधिक विकसित थे। ये जत्थे बना कर रहते थे। आग का इस्तेमाल करते थे। इन्हें 'होमो-वंश' में माना गया। जावा मानव पांच फुट लंबे, लगभग सत्तर किलोग्राम के थे। कपालगुहा का आयतन 750-900 सी.सी. था। ये दूर-

दूर तक फैले थे और जावा, अफ्रीका, चीन में पाए जाते थे। पत्थर के औजार तथा अग्नि का प्रयोग करते थे।

पेकिंग मानव पांच लाख वर्ष पूर्व पाए गए। ये कपि-मानव से अधिक बुद्धि वाले थे। इनकी कपालगुहा 1075 सी.सी. थी। गुफाओं में रहते थे और पत्थर के औजार बनाए एवं सामूहिक रूप से रहते थे। समय और स्थिति का ज्ञान था। अग्नि का प्रयोग करते थे और छोटा कद था।

हीडलबर्ग मानव पांच लाख वर्ष पूर्व के माने गए। यह आधुनिक मानव की शक्ल में कम थे। जबड़ा बड़े कपि के समान था।

इसी तरह एटलांटिक मानव भी पांच लाख वर्ष पूर्व के माने गए। जावा तथा पेकिंग मानव के समान। इस वंश की मानव-जाति के अध्ययन से पता चलता है कि ये समूह में रहने और गुफाओं को अपना घर बनाने के साथ-साथ इनका समाज एक स्वरूप ग्रहण कर रहा था। ये अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए शिकार करते थे, जिसके लिए इन्होंने पत्थर के अनगढ़ औजार बनाए। ये आग का प्रयोग जान रहे थे। आदिमानव का यह वर्ग हालांकि अपनी उदरपूर्ति के लिए शिकार करता था तथा सुरक्षा के लिए सामूहिक रूप से गुफाओं में रहता था, लेकिन इनका अपना एक विशेष रहन-सहन था जिसे हमें इनकी सभ्यता मानना होगा।

विकास की शृंखला में हम आगे देखेंगे कि भौतिकवादियों की यह धारणा कि वातावरण से समन्वय के प्रयास में ही सभ्यता का विकास होता है—एक दृष्टि से सही है। समूह में रहने का अपना अनुशासन होता है और यहां इकाई को ताल-मेल बैठाने के प्रयास में अपनी प्रवृत्तियों पर भी कहीं-न-कहीं समायोजन के लिए काबू रखना पड़ता होगा। विरोधियों के प्रति आक्रामकता तथा अपने समूह के लिए आत्मिकता रखनी ही होती होगी। यानी वातावरण से समायोजन सभ्यता की सीमा में प्रवेश कर रहा था तथा गुफाओं में, समूह में रहने की प्रक्रिया सांस्कृतिक संस्कार का आरंभ कर रही थी।

वास्तविक मानव-जाति निएंडरथल (होमोनिएंडर थेलिंसिस) यूरोप में डेढ़ लाख वर्ष पहले रहती थी। पैंतीस हजार वर्ष पूर्व यह जाति लुप्त हो गई। इसकी 1.6 मीटर की लंबाई तथा शरीर सुडौल था। इनकी कपालगुहा वर्तमान मानव के समान 1400 से 1450 सी.सी. थी। ये शिकार के लिए औजार इस्तेमाल करते थे। कहा जा सकता है कि इनका सामाजिक जीवन शुरू हो गया था। काम का विभाजन इनकी विशेषता थी। मुर्दों को अपने रीति-रिवाज के मुताबिक गाड़ते थे। इनके नरभक्षी होने के प्रमाण भी मिलते हैं। पशुओं की खाल खुरच कर ओढ़ते थे। तीर, भाले, चाकू का प्रयोग करते थे। ऐसा भी ज्ञात होता है कि ये आत्मा की अमरता को मानते थे। धर्म का आरंभिक रूप भी इनसे प्राप्त होता है। बोलने की योग्यता भी इनमें विकसित हुई। ये यूरोप, एशिया, अफ्रीका तक फैले हुए थे।

दूसरी प्रकार की मानव-जाति क्रोमैगनान (होमोसेपियेंस फौसिलिस), निएंडरथल मानव के लुप्त होने के बाद चालीस हजार वर्ष पूर्व हुई। दोनों जातियां कुछ काल तक साथ भी रहीं। छह फुट लंबा, चौड़ा माथा, नाक उठी हुई। कपालगुहा 1600 सी.सी. में यह छोटे परिवार के साथ गुफाओं में रहते थे। आग पर खाना पकाना जान लिया था। पत्थर तथा हाथीदांत के औजार (भाले, कुल्हाड़ी, बाण) इस्तेमाल करते थे। हाथीदांत के आभूषण भी प्राप्त हुए हैं। ये अधिक चतुर और तेज तथा बुद्धि की दृष्टि से अधिक विकसित थे। ये चित्रकारी भी करते थे। यानी इस जाति ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम वाणी के साथ चित्रकला को भी बनाया। दस हजार वर्ष पहले यह जाति भी लुप्त हो गई।

वर्तमान मानव (होमोसेपियेंस सेपियेंस)—माना जाता है कि वर्तमान मानव का विकास क्रोमैगजॉन मानव से हुआ। दस हजार वर्ष पूर्व एशिया के कैस्पियन सागर के समीप यह जाति विकसित हुई। प्रमस्तिष्क व अनुमस्तिष्क का जटिल विकास हुआ। ये धीरे-धीरे कृषि की तरफ बढ़े। धर्म तथा समाज का महत्त्व। कपालगुहा का आयतन 1450 सी.सी. और चेहरा सुंदर होता था।

सांस्कृतिक विकास के तीन काल : सांस्कृतिक विकास के तीन काल माने गए—

(1) पूर्व पाषाण काल, (2) मध्य पाषाण काल, (3) नव पाषाण काल। ए. एस. रोमर ने मानव प्रजातियों को चार प्रमुख समूहों में विभाजित किया है। ये हैं—(1) **ऑस्ट्रेलॉयड्स** : आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका के

बुशमैन, भारत के भील तथा लंका के वेढ़ा। रंग काला, सिर लंबा, नाक चपटी, माथा छोटा, शरीर के बाल घने। सिर पर घुंघराले बाल। (2) **नीग्रॉयड्स** : अफ्रीका और पैसिफिक द्वीपों के नीग्रो। कांगो, अंडमान, मलाया, न्यूगिनी, फिलीपाइन द्वीप के बौने। उष्णकटिबंधीय प्रदेश के रहने वाले। रंग काला, सिर के बाल ऊनी कुंडलित, होंठ मोटे। (3) **काकेशियाड्स** : भूमध्य सागरीय देश के निवासी। उत्तरी अफ्रीका, रूस, अरब देश तथा भारतवर्ष में रहने वाले। रंग भूरा या गोरा, सिर लंबा या चौड़ा, सिर के बाल लहरदार। लड़ाका प्रजाति। (4) **मन्गोलॉयड्स** : शीत प्रदेश के निवासी। चीनी, जापानी, मंगोली, एस्किमो, अमरीका के रेड इंडियंस। कद सामान्य, रंग लाल, भूरा, पीला। चेहरे पर बहुत कम बाल। सिर पर घने बाल—काले, सीधे, सख्त। आंखें छोटी। (कशेरुकी प्राणीशास्त्र-कोटपाल)

मानव के विकास का यह वर्णन हमारे जिज्ञासात्मक प्रश्न का उत्तर देता है। स्पष्ट जाहिर है कि जैसे-जैसे कपालगुहा का आयतन बढ़ा है, जातियों (प्रजातियों) में बौद्धिक तत्त्व भी बढ़ा है। मनुष्य की आवश्यकताओं ने उसे औजार बनाना सिखाया, अग्नि की जानकारी ने उन्हें धीरे-धीरे शिकार में लाया और मांस पका कर खाना सिखाया। हमें यह भी ज्ञात होता है कि समूह में रहने के साथ एक तरह की सामाजिकता की शुरुआत भी हुई, जिसमें संबंधों का समायोजन हुआ। इसे हम इन जातियों-उपजातियों की सभ्यता कह सकते हैं, कहा जाना चाहिए। सभ्यता की पहचान और मानक समय के संदर्भ के साथ होने चाहिए। पत्थरों के औजारों से, हड्डियों तथा हाथीदांत के औजारों का तथा आभूषणों का बनाया जाना व गुफाओं में चित्रकारी करना इन जातियों का आविष्कार और कला-कौशल की ओर अग्रसर होना माना जाना चाहिए। हम जानते हैं कि आविष्कार तथा कला की अभिव्यक्ति का संबंध मात्र बुद्धि से नहीं होता। उसमें भावना-पक्ष तथा हृदय-पक्ष भी रहता है। मृतकों के लिए सुरक्षित कब्र बनाना, उनके साथ अन्य सामग्री रीति के अनुसार रखना, मात्र मोह नहीं हो सकता। इसमें किन्हीं मान्यताओं के प्रति श्रद्धाभाव भी लक्षित होता है। श्रद्धा, आध्यात्मिकता की बुनियादी प्रवृत्ति होती है। विद्वानों ने इसे 'आत्मा' की अविनाशिता की अभिव्यक्ति माना है।

इससे निष्कर्ष तक पहुंचा जा सकता है कि जहां मनुष्य की अपने समय में एक विशिष्ट प्रकार की जीवनशैली होती है, वह भौतिक माध्यम में ही विकास पाती है, जिसे हम सभ्यता कहते हैं।

इसी के समानांतर मानव की आंतरिक मांग भी होती है जिसकी पूर्ति वह हृदय पक्ष (भाव-पक्ष) से करता है। यह उसका कला पक्ष ही नहीं, आध्यात्मिक पक्ष भी होता है—जिसका संबंध चेतना की गहराई से रहता है। यदि आगे के विकास को देखा जाए तो आध्यात्मिकता तथा कला मिश्रित अभिव्यक्ति को पाते हुए दीखते हैं। यह दृष्टिकोण आदर्शवादी है, व्यवहारवादियों से विपरीत।

डॉक्टर राधाकृष्णन ने मानव के इस आंतरिक पक्ष पर सूक्ष्म चिंतन करते हुए अंतश्चेतना की शक्ति पर जोर देते हुए इसे आविष्कार तथा सृजनात्मक कार्य का आधार बताया है।

अंतश्चेतना का सुझाव अकसर अचानक प्रकट होता है। इसकी पूर्व क्रिया में विषयी गंभीर तथ्यात्मक चिंतन तथा एकाग्रता की क्रियात्मकता में होता है (यह बौद्धिक क्रिया होती है), लेकिन ज्यादातर खोजी समाधान विश्राम के समय अथवा काम से हटी हुई स्थिति में स्वतः अनायास प्रकट होता है। विषयी को इस समाधान के अनुसार तथ्यों की पुनर्व्यवस्था करनी होती है। कार्य के बाद जांच में अनायास प्रकट हुआ हल सही साबित होता है। राधाकृष्णन इसे 'गहरी चेतना', 'पूर्ण व्यक्तित्व' तथा संपूर्ण मस्तिष्कीय क्षमताओं का कार्य मानते हैं। वे लिखते हैं—'ऊर्ध्वमुखी उत्प्रेरणा अचेतन तथा असंकल्पित स्थिति में जन्मती है।'

वे अंतश्चेतना तथा बौद्धिक चिंतन को सर्वथा पृथक नहीं मानते। उनके अनुसार—'मात्र अंतश्चेतना अंधी होती है, मात्र बौद्धिक कार्य खोखला होता है। सारी प्रक्रियाएं आंशिक रूप में अंतश्चेतनात्मक होती हैं, आंशिकता में बौद्धिक।'

हमें समझ लेना चाहिए कि मनुष्य की पूर्णता आत्मिक अंतर्चेतना तथा विवेक—दोनों की सक्रियता में है। एक हमें उच्च स्तर की उपलब्धियों की प्रेरणा देती है (इसमें आध्यात्मिकता की ओर आकर्षण भी शामिल है), दूसरी हमें व्यावहारिक जीवन में सहायता देती है।

आंतरिकता की सृजनात्मकता तथा ज्ञान सांस्कृतिक पक्ष को विकसित तथा दृढ़ करता है। बौद्धिक पक्ष व्यावहारिक तथा भौतिक उपलब्धियों पर ज्यादातर केंद्रित रहता है।

जिस मानव के क्रमिक विकासवाद का हमने ऊपर उल्लेख किया है, इसके संबंध में यह धारणा सामने आ रही है कि मानव का विकास लामार्क तथा डार्विन की स्थापनाओं के अनुसार पूरी तरह से नहीं रहा है। इसमें मानव-जाति का विकास उस अंतःऊर्जा के कारण स्वधर्मी होकर उछालों में भी आगे बढ़ा हुआ हो सकता है।

मानव के मनोविज्ञान को, उसके मानस अथवा चित्त (साइकी) को जानना अत्यंत आवश्यक है (चाहे वह पाषाण युगों का अल्प बौद्धिक मानव रहा हो या ऐतिहासिक युग का अथवा आधुनिक मानव)। इसकी जानकारी हमें इस प्रश्न का समाधान देगी कि संस्कृति तथा सभ्यता का संबंध किस तरह का रहा है।

हम जीवनशैली और कला तथा आध्यात्मिक चिंतन में दीवारें नहीं खींच सकते। यह प्रक्रिया मिश्रित प्रक्रिया है। पाषाण युग के मानव ने अपनी जीवन की आवश्यकताओं तथा समूह में रहने की अनिवार्यता के कारण गुफाएं ढूंढ़ी, अग्नि का उपयोग जाना, पहले पत्थरों के, फिर जानवरों की हड्डियों तथा हाथीदांत के औजारों का शिकार के लिए आविष्कार किया। यह पक्ष उनकी जीवनशैली का था, जिसे हम उनकी सभ्यता के लक्षण स्वीकार करते हैं, लेकिन आविष्कार का होना अथवा हाथीदांत के आभूषण बनाए जाना तथा मृतकों को गाड़ना व उनके साथ भोजन आदि रखना तथा किसी लोकातीत शक्ति अथवा 'आत्म तत्त्व' की भावना रखना—अंतःकरण की प्रक्रिया है। इसे डॉक्टर राधाकृष्णन ने अंतश्चेतना भी कहा है तथा चेतना का गहरा स्तर भी। आगे चल कर यह दर्शन तथा धर्म का रूप लेती रही। जागतिक जीवन की क्लिष्टता, जीने की आकांक्षा और उसकी प्राप्ति के साधन जुटाने में आने वाली बाधाएं, असफलताएं, दुख, द्वंद्व आदि ने उसे अपूर्णता का एहसास कराया, उसकी सृजनात्मकता तथा कल्पना की उर्वरता ने लोकातीत समाधान प्रतीकों के रूप में अनुसंधानित किए। यह उसकी अंतःकरण की प्रक्रिया थी, जिसमें व्यावहारिक अनुभूतियों का सांस्कारिक कोष कारक था। ईश्वर को पिता स्वरूप मानना (उस पर श्रद्धा रखना)—पिता तथा पुत्र के जागतिक संबंध का ही विस्तार माना गया है। यही श्रद्धा-आधारित चिंतन संस्कार का रूप लेता हुआ संस्कृति के रूप में स्थायित्व लेता रहा। यज्ञ तथा प्राकृतिक शक्तियों पर देवत्व आरोपित करना सिर्फ भय अथवा उपयोगिता की भावना से उत्पन्न नहीं रहा, बल्कि मनुष्य की अनुकरणात्मक श्रद्धा तथा सृजनात्मकता का द्योतक है। प्रकृति के सौंदर्य और उसकी देन के प्रति कृतज्ञता मानव के अंतःकरण की परिष्कृत भावनाओं की अभिव्यक्ति है—अहिंसात्मक आत्मीय भावनाओं की अभिव्यक्ति। इसमें संघर्ष की उद्दामता नहीं, तादात्म्य की सात्त्विकता है। सृष्टि से, ब्रह्मांड से एकात्मकता। यह एशियाई संस्कृति का केंद्रक है।

आध्यात्मिक तत्त्वों की यह सांस्कृतिक अभिव्यक्ति (आस्था) विश्व की प्रमुख सभ्यताओं—सिंधुघाटी सभ्यता, मिस्र की सभ्यता, मैसोपोटामिया की सभ्यता तथा चीन की सभ्यता में उनकी जीने की शैली, सामाजिकता तथा कलाओं में सामान्य रूप में मिलती है। इनकी भिन्नता तथा समानता का वर्णन यहां उपयुक्त होगा।

सभ्यता

सभ्यताएं नदियों के पास पनपीं और लंबे अरसे तक बनी रहीं। इन में नगरीय और ग्रामीण बसावट थी तथा कृषि आधारित होने के बावजूद इनमें संपन्नता के लिहाज से अलग-अलग वर्ग मिलते हैं (धनिक वर्ग, व्यापारिक वर्ग, कृषि वर्ग, सेवक वर्ग, छोटे धंधे करने वाला वर्ग)। इस काल में धातुओं का प्रयोग शुरू हो गया। गृह-निर्माण, नगर का आयोजन, शैल्पिक कला के प्रमाण भी इस काल में मिलते हैं। देवताओं को मानना, सामाजिक दंड-विधान भी मिलता है। धातुओं के उपयोग के कारण जहां इसे ताम्र व कांसे का युग कहा गया, वहीं इसका आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, अनुसंधानात्मक, सृजन व कलापक्ष भी महत्त्वपूर्ण है। जीवनस्तर बढ़ रहा था तथा सामाजिक संगठन भी सत्तात्मक व वर्गीय स्वरूप ले रहा था। व्यापार के आयाती-निर्यातीं स्वरूप की परस्परता बढ़ रही थी।

सभ्यताओं का यह विकास मात्र भौतिक दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए। मानवीय संबंध को बौद्धिकता के योजनात्मक उपयोग तथा भावनात्मक परिष्कार व सामाजिक कर्तव्य तथा मर्यादात्मक मूल्यों की स्वीकृति

की दृष्टि से भी जांचा जाना चाहिए, क्योंकि संस्कृति की एक अंतःधारा भी अक्षुण्ण रूप से अपने होने का प्रमाण देती है।

सिंधु घाटी/सरस्वती घाटी सभ्यता (सारस्वत सभ्यता)

इस सभ्यता का काल 3000 ई.पू. से 1500 ई. पू. है। सभ्यता के अवशेष प्रथम बार सन् 1922 में प्राप्त हुए। इस सभ्यता के अवशेष पंजाब, हरियाणा, गुजरात, राजस्थान तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पाकिस्तान के सिंध तथा बलूचिस्तान में विभिन्न नदियों के निकट प्राप्त हुए हैं। सरस्वती नदी—जो कि अब लुप्त हो गई—के किनारे पीलीबंगा में, गुजरात में लोथल, पंजाब में रोपड़, हरियाणा में बनावली स्थान पर प्राप्त हुए हैं।

पीलीबंगा में चार-पांच कमरों के मकान, सड़क के दोनों तरफ गंदे पानी की निकासी की सुविधा के साथ मिले हैं। ऊंची गढ़ी मिली है। खुदाई में पत्तों और पशुओं तथा पक्षियों से चित्रित बर्तन, पहिएदार खिलौने, तौल के बाट, तांबे के औजार, मिट्टी की मुहरें, शव विसर्जन के स्थान मिले हैं। धोलाविरा (गुजरात) में जलाशय, गोलाकार नहाने के स्थान, स्टेडियम व चक्राकार कब्रें मिली हैं। कुनास (हरियाणा) में बड़े बर्तन, तांबे के तार, मछली पकड़ने के कांटे मिले हैं।

हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो में नगर की बसावट मिलती है। 400 मीटर लंबी, दस मीटर चौड़ी सड़क के अवशेष प्राप्त हुए हैं। सड़क के किनारे पक्की ईंटों के कई मंजिला मकान, मकानों में कुएं, सार्वजनिक भवन, अनाज संग्रह के भंडार आदि भी मिले हैं। मोहनजोदड़ो में बड़ा स्नानागार भी मिला है।

यहां के लोग कृषि करते थे, अनाज उगाते थे, जिन्हें भंडारों में रखते थे। कपास की खेती होती थी। बेबीलोनिया को बुने हुए कपड़े भेजे जाते थे। मिस्र से भी व्यापारिक संबंध थे। यहां मिट्टी, पत्थर के रंगीन बर्तन तथा तांबे व कांसे के बर्तनों का निर्माण होता था। लाल-नीले पत्थरों व कांसे की मूर्तियों का निर्माण होता था। तांबे के बने फरसे, भाले, हड्डियों की कटार, बाण, चौपड़ के पासे आदि बनते थे। आभूषणों में सोने, चांदी, सीप व पालिशदार मिट्टी के हार, कड़े, बाजूबंद आदि—स्त्रियों की शृंगार-सामग्री के प्रमाण मिले हैं। लोथल (गुजरात) से नावों के द्वारा दिलमन (बहरीन) तथा मिस्र और सुमेरिया सामान भेजा जाता था। धातुओं के औजार, मसाले, गेहूं, वस्त्र, सोने-चांदी का आयात होता था।

सरस्वती नदी घाटी के अवशेषों में योगी और पुरोहित की मूर्ति प्राप्त हुई है। रथ की शक्ल के खिलौने मिले हैं। शिवलिंग की मूर्तियां भी मिली हैं। ऐसा लगता है कि लोगों का जादू-टोनों में भी विश्वास था। इनकी भाषा में लिखी मिट्टी की मुहरें प्राप्त हुई हैं, जिनके अर्थ को नहीं समझा जा सका है। बाटों के गोल आकार से गणित तथा नाप का ज्ञान होता है।

मेसोपोटामिया की सभ्यता

इस सभ्यता का काल 1500 ई.पू. था। दजला तथा फरात नदियों के बीच का भाग; प्रारंभ में सुमेर, मध्य समय में बेबीलोनिया और अंतिम समय में असीरियाई सभ्यता का विकास हुआ माना जाता है। अलग-अलग काल में विशिष्ट प्रवृत्ति की प्रधानता मिलती है। सुमेर सभ्यता में नगर आयोजन, बेबीलोनिया सभ्यता-काल में कानून व दंड-व्यवस्था, असीरियन सभ्यता काल में सैनिक संगठन तथा बड़े मार्गों का निर्माण आदि।

इस सभ्यता में छोटे-बड़े नगरों के प्रमाण मिलते हैं, जिनमें उर नगर मुख्य था। नगर के तीन प्रमुख अंग माने गए—(1) **पवित्र क्षेत्र**—यह एक टीले पर बसा था, जिस पर मंदिर था। इसे जुगरात (स्वर्ग की पहाड़ी) कहते थे। धर्म के नाम से प्रशासन चलता था। कार्यालय तथा भंडार भी यहीं थे। यह तीन मंजिल का बीस मीटर ऊंचा निर्माण था। जुगरात का देवता नन्नास (चंद्रमा) था। अन्य क्षेत्रों में अलग-अलग दूसरे देवताओं की मान्यता थी। भवन निर्माण में गुंबद, मेहराब, तहखाने रहते थे। इस सभ्यता में पंचांग कानून, सैनिक तथा शासन तंत्र विकसित था। (2) पवित्र क्षेत्र को दीवारों से घेरा गया था। (3) दीवार के बाहर नगरवासी बसे थे। नदियों से नहरों का निर्माण किया गया, जिनके जरिए जलाशयों में उपयोग के लिए पानी इकट्ठा किया जाता था। कृषि की संपन्नता के कारण लोग भी संपन्न थे।

यहां राज्य-तंत्र के कारण शाही कब्रों में कला की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। सोने-चांदी के बर्तनों व

लकड़ी के 'फर्नीचरों' पर कलात्मक कार्य मिलता है। धातुओं को रसायन विधि से गला कर आभूषण बनाए जाते थे।

शासक हंबूराबी के समय में कानून बना कर दंड व्यवस्था को जारी किया गया। ये कानून एक बड़े खंभे पर खुदवाए गए थे। कानून व्यवस्था में दंड विधान 'वर्ग' के अनुसार था। उच्च वर्ग को हलका, मध्यम वर्ग को उससे कड़ा तथा निम्न वर्ग को सबसे सख्त दंड दिया जाता था। उच्च वर्ग में राजकर्मचारी और पुरोहित; मध्यम वर्ग में व्यापारी तथा कारीगर व निम्न वर्ग में दास थे।

सिंधु सभ्यता के व्यापार में लट्ठों से बेड़ा बना कर, हवा से भरी मशकों से बांध कर (क्लेक द्वारा) व्यापार होता था। आवागमन के साधन रथ थे। तेज औजार से चिकनी मिट्टी की पट्टियों पर 'कीलाकार लिपि' का प्रयोग होता था। घंटे, मिनट का ज्ञान हो गया था। इकाई साठ की मानी जाती थी। वृत्त का तीन सौ साठ अंशों में विभाजन माना गया। बारह राशियों का भी ज्ञान था।

मिस्र की सभ्यता

इसे नील नदी की सभ्यता भी कहा जाता है, जिसका समय 3000 ई. पू. से 500 ई. पू. है। यहां के राजाओं को 'फराओ' कहते थे। इनको देवता का अवतार माना जाता था। इनका आदेश ईश्वरीय कानून समझा जाता था। इनकी मूर्तियों की पूजा होती थी। मिस्र के पिरामिड इनकी स्मृतियों में बनाए गए थे। तूतनखानम का प्रसिद्ध मकबरा और उस समय के तीस पिरामिड अभी भी हैं। गिजा नामक पिरामिड सियोफ द्वारा निर्मित है। जो एक लाख कारीगरों द्वारा बीस वर्ष में निर्मित हुआ माना गया। यह 165 मीटर ऊंचा है तथा तेईस हजार शिलाओं से निर्मित है।

मिस्र में अनेकों मंदिर प्राप्त हुए, जिनमें प्रकृति के देवों की पूजा होती थी। मुख्य रूप से सूर्य की पूजा। 'अंबुल सिंबल' नामक सूर्य मंदिर है। 130 खंभों का एक और मंदिर भी मिला है। फिनिक्स की मानव के सिर और सिंह के शरीर वाली विशाल पत्थर की प्रसिद्ध मूर्ति भी मिली। बहुत ही संपन्नता और विलासिता का जीवन माना गया। धूप, तेल, चांदी, इमारती लकड़ी बाहर से आते थे। पत्थरों के कलात्मक फूलदान, हाथीदांत तथा मणियों से सजे फर्नीचर, शीशे व शीशे के बर्तन वैभव को दर्शाते हैं।

गणित में एक, दस, सौ के चिह्न, बाढ़ के अध्ययन से पंचांग का आविष्कार। काहिरा में बाढ़ पहुंचने के समय को एक वर्ष (365 दिन) माना। 'सिरियस' नामक तारे से बारह मास तथा तीस दिनों की गणना। त्रिभुज, आयत, क्षेत्रफल की अवधारणा उनके पास थी। ज्योतिष का भी ज्ञान था।

सबसे अधिक प्रसिद्ध उनका रसायन ज्ञान था, जिसके कारण वे शव को हजारों वर्ष तक सुरक्षित रखते थे। इनकी लिपि में चौबीस चिह्न थे, जिन्हें पवित्र लिपि (हेरोग्लफिक) कहा जाता था। व्यंजन को विशेष चिह्न दिया। पेपरिस के पेड़ों के पत्तों पर लिखते थे।

चीन की सभ्यता

यह व्हांगहो नदी की घाटी की सभ्यता है, 1765 ई. पू. से 250 ई.पू.। मुख्य रूप से शाङ्ग वंश तथा बाद के चाऊ वंश का राज्य रहा। मजबूत सैनिक व्यवस्था रही—धातु के कवच, मस्तक, कांसे के शिरस्त्राण, कटार, कुल्हाड़ी व नुकीले बाण।

राजाओं को देवपुत्र माना जाता था। धर्म तथा प्रशासन व्यवस्थित था। सम्राट ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। स्वर्ग के देवताओं में श्रद्धा थी। छठी शताब्दी पूर्व लाउत्से और कन्फ्यूसियस विचारधाराओं को मान्यता। धार्मिक आचार संहिता।

चीनी भाषा की चित्रात्मकता इसी काल की सभ्यता की देन है। चालीस हजार संकेत मिलते हैं। पंचांग सौर, चंद्र की गणनाओं का मिश्रण व महीने के उनतीस तथा तीस दिन तथा 365 दिनों के वर्ष का ज्ञान था।

रोगी को चेतनाशून्य करने का ज्ञान था। फूलदानों और औजारों पर कलात्मक सजावट। रेशमी वस्त्र के लिए कीड़े पालने और कृषि की प्रधानता का जिक्र भी है।

वैदिक सभ्यता : आर्यों की सभ्यता

आचार्य चतुरसेन ने वैदिक काल की संस्कृति तथा सभ्यता पर विद्वत्तापूर्ण कार्य किया है, लेकिन उनका आधार-स्रोत पश्चिमी लेखक रहे हैं। इसलिए उनका मानना है कि आर्य-जाति विदेशी जाति थी, जो लगभग 1800 वर्ष या इससे भी अधिक पहले अफगानिस्तान के रास्ते से आई।

शेष पृष्ठ 51 पर

❑❑

नग्नता और सवस्त्रता का अपना-अपना उपयोग है। मूल बात यह है कि साधक राग-द्वेष पर विजय का अभ्यास करे। जो कपड़ा नहीं रखते हैं, यदि उनके भी राग-द्वेष प्रबल हैं, तो मुक्ति नहीं मिल सकेगी। दूसरी ओर जो कपड़े तो रखते हैं, किंतु वे राग-द्वेष शून्य हो गए हैं—तो मुक्ति मिलने में कोई बाधा नहीं होगी। निर्वस्त्र रहना बड़ी कठोर साधना है, किंतु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि राग-द्वेष मुक्ति का अभ्यास किसका कितना है। परीषहों को सहने का अभ्यास किसका कितना है। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में शांत रहने का अभ्यास किसका कितना है। यह सब देखना जरूरी है। अतः जरूरी है कि साधक राग-द्वेष मुक्ति की साधना करे।

प्रतिरूपता : अनासक्ति की साधना

आचार्यश्री महाश्रमण

साधना की विभिन्न पद्धतियां हैं। इन में प्रतिरूपता भी एक है। प्रश्न किया गया—**'पडिरूवयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ**—भंते! प्रतिरूपता से जीव क्या प्राप्त करता है?'—उत्तर दिया गया—**'पडिरूवयाए णं लाघवियं जणयइ। लहुभूए णं जीवे अप्पमत्ते पागडलिंगे पसत्थलिंगे विसुद्धसम्मत्ते सत्तसमिइसमत्ते सव्वपाण-भूयजीवसत्तेसु वीससणिज्जरूवे अप्पडिलेहे जिइंदिए विउलतवसमिइसमन्नागए यावि भवइ**—प्रतिरूपता से वह लघुता को निष्पन्न करता है। उपकरणों के अल्पीकरण से हलका बना हुआ जीव अप्रमत्त, प्रकटलिंग वाला, प्रशस्तलिंग वाला, विशुद्ध सम्यक्त्व वाला, पराक्रम और समिति से परिपूर्ण, सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के लिए विश्वसनीय रूप वाला, अप्रतिलेखन वाला, जितेंद्रिय तथा विपुल तप और समितियों का सर्वत्र प्रयोग करने वाला होता है।'

प्रतिरूपता का मतलब है—अचेलता और अचेलता का तात्पर्य है—पूर्ण निर्वस्त्र साधना। वस्त्र के संदर्भ में जैन मत में दो प्रकार की परंपराएं मान्य हैं—दिगंबर और श्वेतांबर। दिगंबर परंपरा में निर्वस्त्र होकर साधना की जाती है। वर्तमान में भी अनेक साधु नग्न रह कर साधना करते हैं। श्वेतांबर परंपरा में सवस्त्र साधना की जाती है। दोनों ही परंपराओं की अपनी-अपनी उपयोगिता और महत्त्व है। सवस्त्र साधना की अपेक्षा निर्वस्त्र साधना कुछ कठिन है। सवस्त्र साधना के भी अनेक प्रकार हैं—

* श्वेतांबर जैन साधु-साध्वियां श्वेत वस्त्रों को धारण करते हैं।
* सनातन परंपरा के संन्यासी गेरुए वस्त्र पहनते हैं।
* पार्श्व परंपरा के साधु पीले वस्त्र पहनते हैं।

श्वेत वस्त्र उज्ज्वलता का प्रतीक हैं। अनासक्ति की साधना की दृष्टि से भी इनका कुछ महत्त्व हो सकता है। वस्त्रों को धारण करना भी उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए। साधु इसलिए वस्त्र धारण करे कि सर्दी आदि को कुछ निवारित किया जा सके और कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों को भी दूर किया जा सके, पर वस्त्र धारण के पीछे विभूषा की भावना न रहे। जब आदमी के मन में यह भावना आ

जाती है कि मुझे अच्छे से अच्छा कपड़ा मिले, मेरे कपड़े बिल्कुल उजले रहें। तब कपड़ों को उजला रखने के लिए उन्हें धोना भी पड़ता है। चूंकि कपड़े पहने जाते हैं, तो वे मलिन भी हो जाते हैं और मलिनता को दूर करने के लिए साबुन, सर्फ और पानी आदि की जरूरत पड़ती है और कपड़ों का प्रक्षालन किया जाता है। इसी तरह कपड़ों का प्रतिलेखन भी करना पड़ता है। उन के फटने से सिलाई भी करनी पड़ती है। इस प्रकार वस्त्र रखने से ऐसी बाह्य व्यवस्था में साधु का समय लग जाता है।

दूसरी ओर जो साधु निर्वस्त्र रहते हैं, उन्हें कपड़ा लाने की जरूरत ही नहीं होती है। वे इन सब बातों से भी मुक्त रहते हैं और इस विषय में वे निश्चिंतता का जीवन जीते हैं। साथ ही साथ निर्वस्त्रता को कठोर तपश्चर्या भी कहा जा सकता है। अनेक संत-महात्मा कठोरता का जीवन जीते हैं। वे शरीर को कष्टों में डाल कर भी शांत-चित्त रहने का अभ्यास करते हैं। परंतु, कठोरता के साथ लक्ष्य सदा साधना में रत रहने का होना चाहिए। न कोई दिखावा होना चाहिए और न कोई अन्य उद्देश्य होना चाहिए। कठोर साधना के साथ यदि लालसा या आकांक्षा रहती है तो साधना में कुछ कमी रह ही जाती है। संस्कृत साहित्य में कहा गया—

अग्रे वलिः पृष्ठे भानुः रात्रौ चिवुकसमर्पितजानू।
फरतलभिक्षा तरुतलवासः तदपि न मुञ्चत्याशा पाशः।।

कठोर तपस्या करने वाले कुछ साधक गर्मी के समय चारों ओर अग्नि जला लेते हैं और ऊपर से सूर्य का आतप भी आता रहता है। तीक्ष्ण गर्मी को वे सहन करते हैं। इसी तरह सर्दी के मौसम में रात्रि के समय निर्वस्त्रता की स्थिति में ठुड्डी को घुटनों के लगा कर, सिकुड़ कर बैठ जाते हैं—यानी सर्दी को सहन करने का प्रयास करते हैं। दूसरी ओर सर्दी में आदमी कितने कंबल-रजाई या कपड़े ओढ़ते हैं? वैसी स्थिति में निर्वस्त्र होकर सर्दी को सहन करना कठोर साधना है।

इसी प्रकार भिक्षा के द्वारा जीवनयापन करना, किसी के सामने हाथ फैलाना और मांग कर खाना कोई सामान्य बात नहीं है। सामान्यतः माना जाता है कि इससे आदमी के स्वाभिमान पर गहरी चोट लगती है। जाहिर है कि इस तरह भिक्षा से भोजन प्राप्त करना भी कठिन काम है। इतना ही नहीं, यदि साधक या साधु को रहने के लिए स्थान या मकान न मिले तो वह पेड़ के नीचे भी रहता है। ऐसी कठोर साधना कर लेने वाला भी कभी-कभी किसी तरह की आशा, आकांक्षा अथवा लालसा के पाश में जकड़ा जा सकता है और उससे मुक्त होना उसके लिए कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसकी समूची साधना ही अकारथ हो जाती है।

एक साधक स्ववशता में कपड़ों का त्याग करता है। हमारे संघ में अनेक साधु-साध्वियां ऐसे हैं जिनके पास साधक के एक निश्चित परिमाण के अनुरूप कपड़े हैं, किंतु फिर भी वे उनका कम उपयोग करते हैं। वे कर्म-निर्जरा की भावना से सर्दी को सहन करते हैं। वे कठोर जीवन जीते हैं। फिर भी संभव है कि किसी के मन में किंचित आकांक्षा भी बनी रह सकती है। ऐसी आकांक्षा साधु की साधना को कमजोर बना देती है। इसीलिए कहा जाता है कि साधक को किसी भी तरह की लालसा नहीं रखनी चाहिए।

शास्त्रकार ने प्रतिरूपता के अनेक लाभ बताए हैं। पहला लाभ है—लघुता। साधु के लिए आगम में—**'अप्पबोवही'**—कहा गया है। 'अप्प' का अर्थ है—अल्प और 'उवही' का अर्थ है—उपधि। अल्प के दो अर्थ होते हैं—उपधि का बिल्कुल न होना अथवा थोड़ी उपधि का होना। बिल्कुल छोड़ना मुश्किल हो, तो उपकरणों का ज्यादा संग्रह न हो। जो अचेलता की साधना करता है, वह वस्त्र नहीं रखता है। इस स्थिति में उसे कितने ही उपकरणों से मुक्ति मिल जाती है और वह लघुता को प्राप्त हो जाता है।

दूसरा लाभ है—अप्रमत्तता। उपकरणों के अल्पीकरण से वह हलका बना रहता है। वह अप्रमत्त होता है। जो कपड़े रखते हैं उनके मन में कई तरह की बातें आ सकती हैं। जैसे—मुझे कपड़ा छोटा अथवा बड़ा मिल गया, मोटा मिल गया, मनोज्ञ नहीं मिला। इसी तरह कपड़े हैं, तो उन्हें अपेक्षानुसार धोना, सीना भी पड़ता है। जबकि अचेलता की साधना करने वाला प्रमाद के ऐसे निमित्तों से मुक्त रह सकता है।

तीसरा लाभ है—वह **प्रकट-लिंग** वाला होता है। जो अचेल होता है, उसका लिंग सहज ही प्रकट होता है। एक सवस्त्र मुनि के मन में कोई विकार आ भी गया तो उसे अधिक खतरा नहीं होता, क्योंकि ऊपर आवरण है। किंतु, निर्वस्त्र मुनि के मन में यदि विकार आ जाता है तो वह विकार सबके सामने प्रकट हो सकता है। जाहिर है

कि अचेल साधक को निर्विकारता की कितनी कठोर साधना करनी होती है। पर, जो अचेल नहीं हैं, वे इतना अभ्यास तो अवश्य करें कि उनका विकार कम से कम दृश्य में तो न आए। विकार रहे ही नहीं, यह बहुत ऊंची साधना है।

चौथा लाभ है—वह **प्रशस्त-लिंग** वाला होता है। उसका लिंग विकृत न हो। अचेल साधना वही कर सकता है, जिसका लिंग प्रशस्त होता है।

पांचवां लाभ है—उसका **सम्यक्त्व-विशुद्ध** होता है। साधना में जब इतनी रुचि हो जाती है तो सम्यक्त्व भी ज्यादा निर्मल बन सकता है।

छठा लाभ है—वह **समाप्त-सत्त्व-समिति** होता है। अर्थात् वह पराक्रमशील और सम्यक् प्रवृत्ति वाला होता है।

सातवां लाभ है—वह सर्व **प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के लिए विश्वासपात्र** होता है।

आठवां लाभ है—**अप्रतिलेखन**। सवस्त्र मुनि को कितने ही उपकरणों का दिन में दो बार प्रतिलेखन करना होता है, जबकि अचेल साधक अप्रतिलेखना वाला बन जाता है। नौवां लाभ है—**जितेंद्रिय** यानी इंद्रिय विजय की साधना करने वाला होता है। दसवां लाभ है—**विपुल तप** और **सर्वत्र समितियों का प्रयोग** करने वाला होता है।

कपड़ों को काम में न लेना ही अपने में बड़ी तपस्या है। उसके साथ निर्विकार रहना महान तपस्या है। हर किसी साधक के लिए यह आसान काम नहीं है। अचेलता की साधना करने वाले साधक को लज्जा पर विजय प्राप्त करनी होती है। आदमी के मन में भारी संकोच होता है और नग्नता को स्वीकार करना तो बड़ा ही कठिन है। शास्त्रीय विधान के अनुसार अचेलता की साधना मात्र पुरुष के लिए ही विहित है। साधना के अनेक प्रयोग या लब्धियां ऐसी हैं, जो मात्र पुरुष के लिए ही मान्य हैं, महिलाओं के लिए नहीं। जबकि श्वेतांबर परंपरा का मंतव्य है कि स्त्री को भी मुक्ति पाने का अधिकार है। अपने-अपने सिद्धांत हैं, किंतु नग्नता की साधना मात्र पुरुषों के लिए ही विहित है। नग्नता और सवस्त्रता का अपना-अपना उपयोग है। मूल बात यह है कि साधक राग-द्वेष पर विजय का अभ्यास करे। जो कपड़ा नहीं रखते हैं, यदि उनके भी राग-द्वेष प्रबल हैं, तो मुक्ति नहीं मिल सकेगी। दूसरी ओर जो कपड़े तो रखते हैं, किंतु वे राग-द्वेष शून्य हो गए हैं—तो मुक्ति मिलने में कोई बाधा नहीं होगी। निर्वस्त्र रहना बड़ी कठोर साधना है, किंतु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि राग-द्वेष मुक्ति का अभ्यास किसका कितना है। परीषहों को सहने का अभ्यास किसका कितना है। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में शांत रहने का अभ्यास किसका कितना है। यह सब देखना जरूरी है। अतः जरूरी है कि साधक राग-द्वेष मुक्ति की साधना करे।

हमारे सबसे निकट अपना शरीर है। अतः शरीर के प्रति आसक्ति हो जाना स्वाभाविक है, परंतु महान साधना वह है—जहां शरीर के प्रति भी आसक्ति न रहे। शरीर का उपयोग करना है, इसलिए उसको 'भाड़ा' यानी वेतन देना पड़ता है। जैसे लोग अपने घरों में नौकर रखते हैं, तो उसको वेतन भी देते हैं। इसी प्रकार हमारा शरीर भी नौकर है, कर्मचारी है। इसको भी वेतन देना होगा। वेतन के रूप में शरीर को भोजन मिल जाए, पानी मिल जाए, सर्दी-गर्मी और वर्षा आदि से बचाव का कुछ प्रयास हो जाए, रुग्ण होने पर दवा का प्रयोग किया जाए—यह सब शरीर को वेतन चुकाने के समान है। यह हो जाए, अन्यथा शरीर का शोषण हो जाएगा।

एक मालिक अपने कर्मचारी से पूरा श्रम लेता है, किंतु वेतन पूरा नहीं देता है, तो यह कर्मचारी के साथ शोषण है। यदि कर्मचारी वेतन पूरा लेता है, किंतु श्रम नहीं करता या कम करता है—तो यह मालिक का शोषण हो जाता है। इसी प्रकार शरीर को पूरा वेतन नहीं चुकाते हैं, तो एक दृष्टि से वह शरीर का शोषण है। शरीर से साधना करनी है, तो उसको वेतन चुकाना होगा, ताकि वह हमारी साधना में बाधा उत्पन्न न करे, अपितु वह साधना में सहयोगी बना रहे।

आर्षवाणी में ठीक ही कहा गया कि प्रतिरूपता प्रशस्त होनी चाहिए। इससे लघुता का विकास होता है, हलकापन आता है और साधक अनेक समस्याओं से बच जाता है। ❖

जीवन को सहजता से लेना मुक्ति का पहला चरण है। आप खुद को महत्त्वाकांक्षाओं से जितना अधिक बांधेंगे, मुक्ति की मंजिल उतनी ही दूर होती जाएगी। —**आचार्य रजनीश**

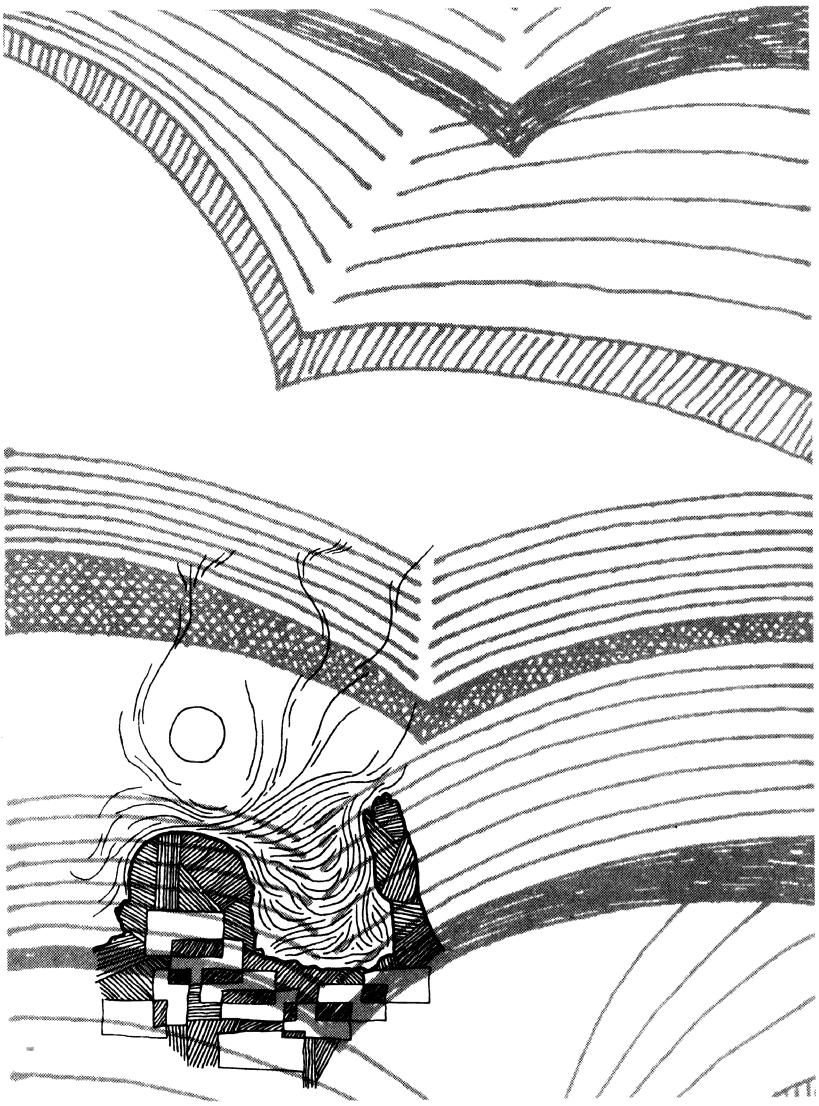

अनुभूति

दवाओं की अलमारियों से सजी इक दोकां में
मरीज़ों के अंबोह[1] में मुज्महिल[2] सा
इक इंसां खड़ा है
जो इक नीली कुबड़ी-सी शीशी के सीने पे लिखे हुए
एक इक हर्फ़[3] को गौर से पढ़ रहा है
मगर उस पे तो 'जहर' लिखा हुआ है
इस इंसान को क्या मरज[4] है
ये कैसी दवा है!

1. समूह, 2. शिथिल, 3. अक्षर, 4. रोग

—शहरयार

❑❑

शक्ति है, पर शक्ति का संयम भी करना चाहिए। जिस दिन यह स्वर निकला, उसी दिन दुनिया में एक महान सत्य की उद्घोषणा हुई। जिसने यह अनुभव किया— 'सब जीव समान हैं, प्राणी मात्र मेरे मित्र हैं'—उसने सबसे बड़े विज्ञान और सत्य की खोज की। कितना उदात्त सिद्धांत है—सबको अपने समान समझ लेना। किसी को सताने की बात ही मन में न आना। जब यह विचार उपजा, मनुष्य समाज में दो प्रकार की चिंतनधाराएं चल पड़ीं। एक वह चिंतनधारा—जो शक्ति और क्रूरता में विश्वास करने वाली है। दूसरी वह चिंतनधारा—जो करुणा, अहिंसा और मैत्री में विश्वास करने वाली है। जिसमें करुणा का इतना विकास होता है, वह किसी को दुख देने की बात सोच ही नहीं सकता। करुणा या अहिंसा का विकास जब तक सही अर्थ में नहीं होता तब तक दूसरों के साथ तादात्म्य-भाव नहीं जुड़ सकता। ऐसे लोग विरल हैं, जिनमें अहिंसा की निर्मल चेतना जाग जाती है।—'सब प्राणी समान हैं—जैसा मैं हूं, वैसे ही दूसरे जीव हैं'—इस चेतना का जागना बहुत कठिन है। इस संदर्भ में महावीर को बहुत संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने अहिंसा के क्षेत्र में कई नई दृष्टियां दीं कि कैसे मनुष्य की चेतना उदात्त बने और जो क्रूरता के बीज हैं—वे नष्ट हो जाएं।

शक्ति हो, पर शक्ति का संयम भी हो

आचार्यश्री महाप्रज्ञ

हम गमन योग कर रहे थे कि एक स्थान पर कुछ देर रुके और देखा कि एक चिड़िया बहुत तेजी से आ रही है और फुदक-फुदक कर वापस जा रही है। ध्यान दिया तो पता चला कि मक्खी जैसे कुछ जीव वहां घूम रहे थे। चिड़िया उन्हें चट करती जा रही थी। वह उन्हें बहुत फुरती के साथ चट कर रही थी। बचाव का कोई विकल्प उन जीवों के सामने नहीं था।

महात्मा गांधी
(30 जनवरी : पुण्य पर्व)
का स्मरण करते हुए

मन में प्रश्न उभरा कि इस दुनिया में शक्ति का सिद्धांत है। जिसके पास शक्ति है, वह कुछ भी कर लेता है। उन जीवों ने चिड़िया का क्या बिगाड़ा? प्रश्न यह नहीं है। प्रश्न है—शक्ति का। शक्ति किसके पास है? इस शक्ति के सिद्धांत के आधार पर यह स्वर उच्चरित हुआ कि **'जीवो जीवस्य जीवनम्।'** मत्स्यन्याय का अर्थ यही है—बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। यह सिद्धांत दुनिया के इस छोर से उस छोर तक व्यापक बना हुआ है। बड़े जीव छोटे जीवों को निगलते जा रहे हैं, खाए जा रहे हैं। इसी के साथ अनेक निरीह प्राणी भी मारे जा रहे हैं। कई तरह की प्रसाधन सामग्री के लिए न जाने कितने पशुओं का वध किया जा रहा है। आदमी को मुलायम जूते पहनने हैं, मुलायम बैग रखना

है—वे मुलायम कैसे बनते हैं? बछड़ा जनमता है, उसके थोड़ा बड़ा होते ही उसे पीट-पीट कर उसकी चमड़ी को मुलायम किया जाता है। उस जीवित बछड़े की चमड़ी से ये मुलायम बैग, जूते बनते हैं। यह घोर क्रूरता है।

शक्ति और क्रूरता

ऐसा लगता है कि शक्ति और क्रूरता जुड़ी हुई है। क्रूरता और शक्ति को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। दोनों साथ-साथ चलते हैं। लोगों को मखमली टोपियां अच्छी लगती हैं। कैसे बनती हैं—ये टोपियां? न जाने कितने प्राणियों को सताया और मारा जाता है—तब ये निर्मित होती हैं। बढ़िया जूते, बढ़िया बैग, अमुक-अमुक बढ़िया उपकरण—इन सबके लिए हजारों-लाखों प्राणियों को क्रूरता से सताया जाता है, पीटा और मारा जाता है। तब इन चीजों का उत्पादन संभव बनता है। आदमी इन प्राणियों की करुण आह से बने पदार्थों को अपने सुख और सुविधा के लिए इस्तेमाल करता है। यह कहना चाहिए कि यह शक्ति का नहीं, क्रूरता का सिद्धांत है।

लोभ से पैदा होती है क्रूरता

मनुष्य के साथ शक्ति और क्रूरता—ये दोनों बातें जुड़ी हैं। मनुष्य में केवल शक्ति की बात ही नहीं है और अनिवार्यता की बात भी नहीं है। वह अपने बड़प्पन के लिए, अपनी सुख-सुविधा या आराम के लिए भी ऐसा करता है। इसीलिए उसके साथ-साथ क्रूरता भी पनप गई। आदमी में लोभ होता है और लोभ क्रूरता पैदा करता है। क्रूरता के साथ बहुत सारी बातें आ जाती हैं। शक्ति, क्रूरता और लोभ का ऐसा गठबंधन है कि जिसके कारण अनेक निरीह पशु मारे जाते हैं। वह आदमी धन्य होता है, जो इससे बच पाता है। पशुओं में चिंतन की धारा नहीं होती है। वे पहले जैसे थे, आज भी वैसे ही हैं। मनुष्य में चिंतन का विकास हुआ है, इसलिए उसने शक्ति को सीमित करने का सिद्धांत भी बनाया।

दो चिंतनधाराएं

शक्ति है, पर शक्ति का संयम भी करना चाहिए। जिस दिन यह स्वर निकला, उसी दिन दुनिया में एक महान सत्य की उद्घोषणा हुई। जिसने यह अनुभव किया—**'सब जीव समान हैं, प्राणी मात्र मेरे मित्र हैं'**—उसने सबसे बड़े विज्ञान और सत्य की खोज की। कितना उदात्त सिद्धांत है—सबको अपने समान समझ लेना। किसी को सताने की बात ही मन में न आना। जब यह विचार उपजा, मनुष्य समाज में दो प्रकार की चिंतनधाराएं चल पड़ीं। एक वह चिंतनधारा—जो शक्ति और क्रूरता में विश्वास करने वाली है। दूसरी वह चिंतनधारा—जो करुणा, अहिंसा और मैत्री में विश्वास करने वाली है।

करुणा का निदर्शन

श्रीमद् राजचंद्र की घटना का हम स्मरण करें। इसे हम इस संदर्भ में देखें कि करुणा का विकास किस तरह हुआ था। राजचंद्र ने एक व्यापारिक सौदा किया, जिसमें उनको पचास हजार रुपये का लाभ हो रहा था। उस काल में पचास हजार रुपये की कीमत बहुत थी। जिसके साथ सौदा किया, वह बहुत मुसीबत में फंस गया। राजचंद्र ने उस सौदे के मूल खत को मंगाया और यह कहते हुए फाड़ दिया कि राजचंद्र दूध पी सकता है, लेकिन किसी का खून नहीं पी सकता। यह है मनुष्य में करुणा के विकास का निदर्शन। शक्ति के सिद्धांत को अतिक्रांत कर श्रीमद् राजचंद्र ने अहिंसा का जीवंत रूप प्रस्तुत कर दिया।

मानवीय चेतना

ऐसी ही एक घटना बीदासर की है। बीदासर के एक संभ्रांत श्रावक हुए हैं—उत्तमचंदजी बैंगानी। उनके युवा पुत्र का देहावसान हो गया। पता चला कि जो हीरे की अंगूठी है, जिसे उनका पुत्र पहनता था, वह अच्छी नहीं। रत्नों की कुछ ऐसी प्रकृति भी है कि यदि वे अच्छे हैं, तो निहाल कर देते हैं और बुरे हैं—तो घर को बरबाद कर देते हैं। बैंगानीजी के मित्रों ने सलाह दी कि इस अंगूठी को बेच दें। उत्तमचंदजी ने कहा—'मैं इसे बेचूंगा नहीं। इसे कुएं में डाल दो।'—अंगूठी में बहुत कीमती हीरा जड़ा था। मित्रों ने रोकने की कोशिश की कि इतना कीमती हीरा कुएं में क्यों डाल रहे हो? इसे किसी को बेचा जा सकता है। हीरे खरीदने वाले बहुत मिल जाएंगे। उत्तमचंदजी ने भावपूर्ण शब्दों में कहा—'मैं इस हीरे के कारण किसी पिता को पुत्र-वियोग से पीड़ित नहीं देखना चाहता। हीरे के कारण मेरा पुत्र चला गया, उसकी पीड़ा मैंने भोगी है। मैं नहीं चाहता कि किसी पिता को

पुत्र-वियोग से पीड़ित होना पड़े।'—बैंगानीजी ने वह अंगूठी कुएं में डलवा दी। यह है मानवीय चेतना का विकास। जिसमें करुणा का इतना विकास होता है, वह किसी को दुख देने की बात सोच ही नहीं सकता। करुणा या अहिंसा का विकास जब तक सही अर्थ में नहीं होता तब तक दूसरों के साथ तादात्म्य-भाव नहीं जुड़ सकता। ऐसे लोग विरल हैं, जिनमें अहिंसा की निर्मल चेतना जाग जाती है।—'सब प्राणी समान हैं—जैसा मैं हूं, वैसे ही दूसरे जीव हैं'—इस चेतना का जागना बहुत कठिन है। इस संदर्भ में महावीर को बहुत संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने अहिंसा के क्षेत्र में कई नई दृष्टियां दीं कि कैसे मनुष्य की चेतना उदात्त बने और जो क्रूरता के बीज हैं—वे नष्ट हो जाएं।

अरिष्टनेमि की जिज्ञासा

इसी संदर्भ में अरिष्टनेमि द्वारा विवाह के अस्वीकार की बात जब सामने आती है तो कोई आश्चर्य नहीं होता। वे तीर्थंकर होने वाले थे, उनकी अतींद्रिय चेतना जागृत थी। उनकी करुणा और अहिंसा विकसित थी। उनके जीवन का वह घटना प्रसंग सचमुच उदात्त करुणा का निदर्शन है। घटना प्रसंग इस प्रकार है—

राजा वसुदेव के पुत्र अरिष्टनेमि का विवाह राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती से होने वाला था। अरिष्टनेमि की वर-यात्रा प्रारंभ हुई। वह विवाह मंडप के पास आई। उस समय अरिष्टनेमि करुण क्रंदन सुनकर द्रवित हो उठे। अरिष्टनेमि ने सारथि से पूछा—भाई! यह क्या है? सुख की चाह रखने वाले ये निरीह प्राणी इन बाड़ों और पिंजरों में क्यों रोके हुए हैं—

कस्स अटठा इमे पाणा, ए ए सव्वे सुहेसिणो।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धा य अच्छहिं?

सारथि ने कहा—श्रीमन्! ये निरीह प्राणी आपके विवाह में आए हुए लोगों के लिए भोजन के निमित्त बनेंगे।

यह बात सुन कर अरिष्टनेमि के मन पर गहरी चोट लगी। उनके मन में घोर वेदना हुई। ऐसा लगा, जैसे स्वयं उनको ही बांधा गया है। अरिष्टनेमि ने सोचा—यदि मेरे निमित्त से इन निरीह जीवों का वध होता है, तो यह मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं है।

अरिष्टनेमि ने कहा—मैं विवाह नहीं करूंगा। अरिष्टनेमि ने उस समय जो कार्य किया, उसे आज की भाषा में सविनय अवज्ञा आंदोलन या सविनय असहयोग कहा जा सकता है।

सत्याग्रह : असहयोग

अरिष्टनेमि विवाह करने के लिए गए थे, पर विवाह करने से अस्वीकार कर दिया। यह असहयोग आंदोलन का उदात्त रूप था। प्राचीन काल में ऐसी अनेक घटनाएं घटी हैं, जिनमें ऐसा सविनय असहयोग किया गया। यह अस्वीकार की शक्ति है। जो व्यक्ति अकेला जीना जानता है, अकेला रहना जानता है, स्वयं में आनंद को खोज सकता है—उसे असहयोग करने में कोई कठिनाई नहीं होती। जिसके मन में कोई चाह और आकांक्षा नहीं होती, अपने आप में संतुष्ट है, वह असहयोग कर सकता है। अरिष्टनेमि ने सचमुच असहयोग किया। दूसरे शब्दों में इसे सत्याग्रह कहा जा सकता है। सत्याग्रह और असहयोग—ये गांधी-युग के विशेष शब्द हैं। इनका प्रयोग अतीत में भी हो चुका है।

अरिष्टनेमि ने रथ को मोड़ने का आदेश किया। विवाह मंडप की ओर जाते-जाते रथ दूसरी दिशा में मुड़ गया। यह देख सब अवाक् रह गए। अनेक लोगों ने अरिष्टनेमि से कहा—'आप इस प्रकार न मुड़ें। ऐसा करना ठीक नहीं है।' अरिष्टनेमि अपने निश्चय पर अटल रहे। श्रीकृष्ण, वासुदेव आदि के आग्रह को भी अरिष्टनेमि ने अस्वीकार कर दिया। उनकी मंगेतर राजीमती की चीख भी उनके निश्चय को नहीं बदल सकी।

बहुमत का अर्थ

अरिष्टनेमि ने पुनः मुड़ कर नहीं देखा। उनके मन में यह भाव जाग गया कि मेरे कारण कितने प्राणी पीड़ित और दुखी हो रहे हैं। मैं किसी को सताना नहीं चाहता, दुखी और पीड़ित नहीं करना चाहता। मैं यह सब नहीं देख सकता। मुझे अपने आप में रहना है, अकेले में रहना है। वे सचमुच अकेले बन गए। जो व्यक्ति अहिंसा में विश्वास करता है, उसे अकेला रहना या चलना स्वीकार करना होता है। महावीर हों या अरिष्टनेमि या गांधी—अहिंसा के प्रति आस्था वाले व्यक्ति को अकेले चलना होता है।

अरिष्टनेमि ने जो प्रयोग किया, वह सत्याग्रह या असहयोग का ही प्रयोग था। सामयिक सत्य और शाश्वत

सत्य—दोनों संदर्भों में इसकी व्याख्या की जा सकती है। विवाह का स्वीकार या अस्वीकार बहुत छोटी बात है। बड़ी बात है वह सिद्धांत जो अस्वीकार की पृष्ठभूमि में छिपा है।

वस्तुतः इस घटना से अहिंसा का विराट सिद्धांत, सत्याग्रह या सविनय असहयोग का जो सिद्धांत फलित हो रहा है—वह महत्त्वपूर्ण है।

उनके जीवन प्रसंग से अस्वीकार की शक्ति, असहयोग की शक्ति, प्राणी मात्र के प्रति करुणा और अहिंसा का विकास—ये चार बातें यदि जन-जन के जीवन में उतरनी शुरू हो जाएं तो क्रूरता धुल जाए और प्राणी मात्र के प्रति करुणा जाग जाए। मनसा, वाचा, कर्मणा मैं किसी को दुखी बनाने का निमित्त न बनूं, ऐसी भावना बलवती हो जाए। ❖

रचनाकारों से

जैन भारती में नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के विचार-प्रधान व विश्लेषणात्मक लेखों और मौलिक कहानियों-कविताओं का स्वागत है, प्रकाशित-प्रसारित रचनाओं का उपयोग करना संभव नहीं होगा

अपनी रचनाएं कागज के एक तरफ साफ-साफ टाइप की हुई भेजें
हाथ से लिखी हुई रचनाएं भी कागज के एक ओर ही लिखी हों

लिखावट साफ-सुथरी, बिना काट-छांट के होनी चाहिए
कागज के एक ओर पर्याप्त हाशिया अवश्य छोड़ें

जीवन परिचय, व्यक्तित्व व कृतित्व पर लिखे गए लेख सीधे नहीं भेजें
ऐसे लेख हमारे मांगने पर ही लिखें व भेजें तो बेहतर होगा

समसामयिक विषयों पर विचारात्मक टिप्पणियों का भी हम स्वागत करेंगे
ऐसे लेख भी नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के हों और विश्लेषणात्मक हों तो बेहतर होगा

महिलाओं, किशोरों और बाल-मन पर
आधारित रचनाओं का हम स्वागत करेंगे

आप चाहें तो कहानी-कविता
भी भेज सकते हैं

अप्रकाशित रचनाएं लौटाना अथवा इस बारे में
पत्र-व्यवहार करना संभव नहीं होगा

बेहतर हो, भेजी गई रचना की एक प्रति रचनाकार
पहले से ही अपने पास रखें

❑❑

व्यक्ति, समाज और देश से संबद्ध जीवन के प्रत्येक पहलू में एक नया मोड़ निरंतर आ रहा है। ऐसे वातावरण में भारतवासियों को विशेष जागरूकता के साथ काम लेना होगा। यह न हो कि वे संस्कृति के नाम पर प्राचीन रूढ़ियों व अंधविश्वासों से चिपक जाएं और प्रगति के नाम पर किसी सभ्यता व संस्कृति का अंधानुकरण करने लग जाएं। सिनेमा के क्षेत्र में भी कुछ पश्चिम का अंधानुकरण चल पड़ा है—ऐसा लगता है। हो सकता है, जहां खाओ, पीओ और आनंद करो के सिद्धांत की प्रमुखता हो, वहां सिनेमा-जगत में निम्नस्तरीय या विलास-प्रदर्शन वांछित हो, परंतु भारत की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। यहां तो चरित्र-बल अर्जित करना चिंतन का मेरुदंड रहा है।

जनरुचि : उचित हो; हितकर हो

आचार्यश्री तुलसी

भारतीय संस्कृति का लक्ष्य चरित्र-विकास है। अपना चरित्र खोकर कुछ भी पा लेना, यह घाटे का सौदा माना गया है। यहां अर्थ और काम को जीवन का ध्येय नहीं माना गया। मोक्ष-प्राप्ति ही यहां जीवन का परम लक्ष्य रहा है और धर्म उसका साधन। विद्या, अर्थ, नाट्य, संगीत आदि के क्षेत्र में यहां के लोग ऊंचे रहे हैं, पर सर्वोच्च सम्मान या सर्वोच्च पूज्य-भाव त्याग, संयम व चरित्रबल को ही मिला है।

संदर्भ
चलचित्र जगत

एक अकिंचन परिव्राजक के सामने पृथ्वीपति सम्राट, जनमान्य धन-कुबेर, दिग्गज विद्वान, विश्वविश्रुत कलाकार सदा नतमस्तक होते रहे हैं और आज भी हो रहे हैं, क्योंकि उस अकिंचन परिव्राजक के जीवन में निश्छल तपःसाधना, शत्रु-मित्र के प्रति समता का भाव और निःश्रेयस-प्राप्ति की सात्त्विक स्पृहा होती है।

यहां के चिंतक-मनीषी इन दृश्य-नेत्रों से भी आगे अपने अंतश्चक्षुओं से कुछ देखा करते थे। बाह्य-कानों से भी अधिक वे अपनी अंतश्चेतना से सुना करते थे। सृष्टि का अलभ्य रहस्य उन्होंने समझा था।

कला का लक्ष्य

नृत्य और संगीत भारतीय विद्या के प्रमुख सांस्कृतिक अंग रहे हैं। बहुधा भारतीय मानस इन कलाओं का उपयोग भगवत्भक्ति के रूप में करता रहा है। संभव है, इसीलिए इन कलाओं की शिक्षा को विद्या का अंग माना गया था। उस युग में विद्या की परिभाषा थी—**'सा विद्या या विमुक्तये'**—विद्या वह है जो मनुष्य को मुक्ति अर्थात् श्रेयस की ओर प्रेरित करती हो। आज भी यदि कला का लक्ष्य केवल मनोरंजन या विलास ही हो तो भारतीय संस्कृति उसे कला के रूप में स्वीकार नहीं कर सकती।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में—विशेषकर काव्यों, महाकाव्यों व नाटकों में—अनेक तरह के काव्य या कला रसों के साथ शृंगार रस को भी स्थान दिया गया है,

तथापि उन काव्यों का ध्येय केवल शृंगार-तृप्ति ही नहीं रह जाता है। अधिकतर काव्य श्रेय की ओर प्रेरित करने वाले ही मिलते हैं। शृंगार रस भी वहां एक सीमित व सम्मत परिभाषा में प्रकट होता है। अलबत्ता यह सर्वमान्य है कि अशिष्ट वर्णनों को न काव्य माना गया है और न शृंगार रस ही।

चरित्र-बल का देश

प्राचीन काव्य तथा कलाओं का आधुनिक रूप सिनेमा है। इसका बहुत विकास हुआ है और द्रुतगति से होता भी जा रहा है। भारतवर्ष इस क्षेत्र में अगुआ देशों में है—यह सुना जाता है। एक लंबी पराधीनता के बाद भारत की छत्तीस कौमों को अपने भविष्य का अपने हाथों निर्माण करने का अवसर मिला है। व्यक्ति, समाज और देश से संबद्ध जीवन के प्रत्येक पहलू में एक नया मोड़ निरंतर आ रहा है। ऐसे वातावरण में भारतवासियों को विशेष जागरूकता के साथ काम लेना होगा। यह न हो कि वे संस्कृति के नाम पर प्राचीन रूढ़ियों व अंधविश्वासों से चिपक जाएं और प्रगति के नाम पर किसी सभ्यता व संस्कृति का अंधानुकरण करने लग जाएं। सिनेमा के क्षेत्र में भी कुछ पश्चिम का अंधानुकरण चल पड़ा है—ऐसा लगता है। हो सकता है, जहां खाओ, पीओ और आनंद करो के सिद्धांत की प्रमुखता हो, वहां सिनेमा-जगत में निम्नस्तरीय या विलास-प्रदर्शन वांछित हो, परंतु भारत की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। यहां तो चरित्र-बल अर्जित करना चिंतन का मेरुदंड रहा है। यह सही भी है।

इतिहास बताता है कि जो देश और समाज विलास की दिशा में आगे बढ़ा, वह अपने पैरों के बल पर खड़ा नहीं रह सका। बहुत-सी जातियां विलासप्रधान मनोवृत्ति के कारण धूलि-धूसरित हो गईं। जहां चरित्र-बल नहीं है, वहां क्लीवता है। वह व्यक्ति या समाज थोड़ी भी प्रतिकूल स्थिति सह नहीं सकता, प्रतिपक्षी के सामने घुटने टेक देता है। जहां चरित्र-बल है, वहां अन्य साधनों के अभाव में भी पौरुष मूर्तिमान रहता है। वहां आत्म-बल कभी तिरोहित नहीं होता। मैं एक कटु सत्य प्रकट कर रहा हूं कि आजकल के अधिकतर चलचित्र बच्चों, युवकों और बूढ़ों को अश्लील नृत्य व अश्लील संगीत के द्वारा जिस प्रकार कामुकता की ओर ढकेल रहे हैं, उसी प्रकार यदि बहुत दिनों तक यह क्रम चालू रहा तो देश की नैतिक अधोगति सुनिश्चित है। सिनेमा का प्रभाव आज कुछ ही लोगों तक सीमित नहीं रह गया है। सबसे अधिक जनसंख्या को प्रभावित करने वाली कोई चीज आज है तो वह है—सिनेमा। आज मंदिरों, गुरुद्वारों, मस्जिदों, गिरिजाघरों से भी अधिक भीड़ सिनेमाघरों पर देखी जाती है। इस व्यापक प्रभाव का यदि छिछला उपयोग ही होता रहे तो यह अवश्यमेव एक गंभीर विचारणीय बिंदु है।

व्यक्ति-सुधार से वर्ग-सुधार

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि देश में सिनेमा के क्षेत्र में अश्लीलता रोकने के पक्ष में जन-मत तैयार हो रहा है। सरकार भी इस दिशा में प्रयत्नशील है। चलचित्र-जगत में काम करने वाले अनेक प्रमुख लोग भी इस दिशा में बहुत-कुछ सोच रहे हैं।

अणुव्रत-आंदोलन प्रत्येक व्यक्ति व प्रत्येक समुदाय में एक नैतिक हलचल देखना चाहता है। इसीलिए इसका नाम आंदोलन है। अणुव्रत-आंदोलन की यह मान्यता है कि कानून के द्वारा कोई भी सुधार थोपा नहीं जाना चाहिए। वह हृदय-परिवर्तन से ही आ सकता है। व्यक्ति-व्यक्ति और प्रत्येक वर्ग जब स्वयं सुधर जाने के लिए एकमत होकर कटिबद्ध हों तभी सुधार का क्रम बनता है। चलचित्र के क्षेत्र में भी निर्माता, निर्देशक, अभिनेता, अभिनेत्रियां—आदि सभी लोग सुधार लाना चाहें, तो कोई कारण नहीं कि वहां सुधार न आए।

सुधार का आरंभ कहां से

इस विषय में जो सबसे बड़ा तर्क दिया जाता है, वह यह कि सुधार की शुरुआत जनता से ही होनी चाहिए। जन-रुचि बदलने के बाद ही फिल्म-निर्माता परिवर्तन या सुधार की बात सोच सकते हैं। इस संदर्भ में मेरा चिंतन यह है कि सुधार का प्रारंभ दोनों ओर से होना चाहिए। जन-रुचि भी बदले और फिल्म-निर्माताओं की व्यवसाय-मनोवृत्ति भी बदले। मनुष्य प्रगति तब तक नहीं कर सकता, जब तक उसके दोनों चरण आगे न बढ़ते रहें। जो फिल्म-निर्माता यह कहते हैं कि यह सुधार जन-सापेक्ष ही है, वे यह भूल जाते हैं कि चलचित्र स्वयं भी रुचि-परिष्कार का एक साधन है। आज इनके माध्यम से भावी समाज-रचना के लुभावने चित्र लोगों को दिखाए जाते हैं

शेष पृष्ठ 50 पर

उपलक्ष्य में बाबू को एक भाई 'प्रेजेंट' करेगा। यही सोच बाबू बेहद चिंतित है। अनीत से कहता—'देखो अनीत, मेरे लिए एक भाई लाया जा रहा है। किसे मालूम भाई कैसा होगा? कौन जाने रुणटु के भाई जैसा दुष्ट शैतान होगा या नहीं। रुणटु का भाई तो बड़ा ही शैतान है। उसने रुणटु की सब किताबें-कापियां फाड़ दी हैं, रबर चबा डाली है। अगर पेंसिल हाथ में पड़ जाए तो कुछ पूछो ही मत, जमीन पर ठोक-ठोक उसकी नोक तोड़ देता है। कुछ कहने से कोई फायदा नहीं। कुछ कहते ही ऐसा चिल्लाएगा मानो बूथ साहब का बच्चा हो और रुणटु की मां दौड़ कर आ जाएंगी और डाटेंगी—रुणटु! भाई को फिर रुला रहे हो। भाई अनीत! मुझे तो बड़ा डर लग रहा है। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा। मुझे भाई-वाई कुछ नहीं चाहिए।'

अरी बहन, अरी बहना!!

नवनीता देवसेन

छोटे बाबू ने मुट्ठीभर टॉफी लेकर दूसरा हाथ आगे बढ़ाया—'अनीत के लिए?' उसकी मुट्ठी में टॉफी भरते हुए मामा ने पूछा—'अनीत कौन?' सुन कर मां और दीदी ने एक-दूसरे की तरफ देखा। हलके से मुसकरा कर मां बोली—'अनीत! अनीत बाबू का 'बेस्ट फ्रेंड' (अनन्यतम मित्र) है।'

बाबू ने एक मिनट रुक कर उत्तर सुना। सुन कर मंद-मंद मुसकराते हुए दौड़ लगाई। मामा कमरे में बैठे हुए सुनते रहे, बाबू बरामदे में अनीत से बातें करता रहा।

—'मालूम है अनीत! दिल्ली से मेरे मामा कोलकाता आ गए हैं। ये देखो, मुझे कितनी सारी टॉफी दी हैं···और तुम्हारे लिए भी दी हैं। लोगे?—ये लो।'—लेकिन, अनीत तो बड़ा ही असभ्य लड़का है। चुप रहा। थैंक्यू भी नहीं कहा। बाबू ही फिर बोला—'पॉकेट में रख लो। रख लो। फिर चलो, हम क्रिकेट खेलें। मैं एम.सी.सी. और तुम इंडिया। अच्छा! हेड या टेल? नहीं हुआ, नहीं हुआ, नहीं हुआ। तो फिर तुम ओपेन (शुरू) करो।'

कहानी

सारे दिन बाबू अनीत के साथ खेलता है। पूरी दोपहर। जब तक दीदी स्कूल से नहीं लौट आती। जब तक जगन्नाथ दादा आकर नहीं कहते—'चलो बाबू तुम्हारा शरीर पोंछ दें, चलो बाबू दूध पी लो।'

बाबू का स्कूल सुबह लगता है। फिर वो पूरे दिन लंबायमान हो लेटा रहता है। शाम मानो होना ही नहीं चाहती। बाबू घर में करे भी क्या? मां तो धूप में निकलने नहीं देती। भाग्य से अनीत है। अनीत आता है। अनीत की दीदी भी स्कूल से शाम को लौटती हैं, तब तक वो बाबू के साथ खेलता रहता है। बाबू और अनीत की बड़ी दोस्ती है। लेकिन, बाबू अनीत को डांटता-डपटता रहता है। और, अगर मां किसी दिन बाबू को डांट-डपट देती हैं तो बाबू का मिजाज खराब हो जाता है। बाबू उस दिन अनीत को थोड़ा-सा डांट देता है।

लेकिन, अनीत बड़ा अच्छा लड़का है। डांट खाकर झगड़ा नहीं करता। बस, कभी-कभी रो पड़ता है। तब बाबू को ही तो सांत्वना देनी पड़ती है, उसे बहलाना पड़ता है। अभी उसी दिन तो नीले काच का फूलदान तोड़ने पर बाबू को खूब डांट पड़ी। उस दिन बाबू ने अनीत के पास जाकर ही तो दुखड़ा रोया था—'जानते हो अनीत, मेरी क्या गलती? जगन्नाथ भाई ने फूलदान एकदम टेबुल के किनारे रख दिया, मैं दौड़ा जा रहा था, फूलपत्ती शर्ट में फंस गए तो बस फूलदान फटाक से फर्श पर गिर पड़ा। मैंने क्या जान-बूझ कर तोड़ा था, बताओ? मां ने मुझे कितनी बुरी तरह डांट दिया। क्या उनका इस तरह डांटना ठीक था?'

अनीत बोला—'नहीं भाई, बाबू! सचमुच इस तरह नहीं डांटना चाहिए था। जान-बूझ कर तो तुमने उसे तोड़ा नहीं। ऐसा कितनी बार होता होगा? उस दिन मौसी के हाथ से चाय की प्लेट गिर गई, क्या किसी ने मौसी को डांटा? बड़े लोग ऐसा अन्याय करते ही रहते हैं। चलो, हम लोग खेलें। तुम ये सब सोच कर दुखी मत होओ।'

बाबू और अनीत टेलीफोन पर भी गप्प करते। दिन में बाबू अनीत को चौदह बार फोन करता। जब-कभी मन में आता फोन उठा नंबर घुमा देता। अनीत हमेशा तो घर में होता नहीं। बुआ के घर जाता है या फिर पार्क चला जाता है। लेकिन, अधिकतर तो घर में ही रहता है।

—'अनीत, मालूम है, काका ने मुझे एक एयरगन खरीद कर दी है। देखोगे? सच्ची-मुच्ची की एयरगन।'—बाबू कहता है।

अनीत कहता—'देखूं, देखूं।'

—'तो फिर आओ हमारे घर।'

—'ठहरो, पहले मां से पूछ लूं।'

अनीत की मां बहुत अच्छी है। कभी मना नहीं करती। बाबू के पुकारते ही अनीत जा पहुंचता। जितनी देर इच्छा होती, उसके घर रहता। मां जब बाबू को सुलाती तब अनीत भी बाबू के पास लेट जाता है, बाबू के तकिए पर सिर रख कर। दोनों जने गप्प लगाते-लगाते सो जाते हैं। कितने-सारे किस्से-कहानियां। बुआ के घर की बातें, स्कूल की बातें, मामा के घर की बातें।

अनीत ज्यादा बात नहीं करता। अनीत कहानियां सुनता है। बाबू अनीत को कहानी सुनाते-सुनाते कभी नहीं थकता। भूत की कहानी, चोर की कहानी, बाघ का शिकार करने की कहानी। सारी कहानियां अनीत को नई लगतीं। सारी कहानियां वह अवाक् हो सुनता। हां, कभी-कभी अनीत बाबू को अपने स्कूल की बातें जरूर बताता। उनका स्कूल अलग है, फिर भी काफी-कुछ बाबू वगैरह के स्कूल के जैसा ही है। अनीत की 'आंटियां' (दीदी) मानो एकदम बाबू की 'आंटियां' हों।

लेकिन, अनीत दीदी के पास बिल्कुल नहीं जाना चाहता। दीदी के सामने उसे बड़ी शर्म आती है। एक दिन उनकी बातें सुन दीदी ने खीसें निपोर दी थीं। उसी दिन से अनीत दीदी को देखते ही छुप जाता है। चारपाई के नीचे, टेबुल के नीचे या फिर अलमारी के कोने में या जहां-कहीं छुपने की जगह मिले, वहां। किसी भी हालत में दीदी के सामने नहीं पड़ना चाहता। मां के पास अवश्य जाता है। मां तो उस पर हंसती नहीं। अनीत के साथ बाबू जब गप्प लगाता तब मां चुपचाप सुनती रहतीं। कभी-कभी तो उनकी बातें सुनते-सुनते मां खुद ही सो जातीं।

वो केवल गप्प-भर ही तो न लगाते। बाबू अनीत के साथ हो-हल्ला भी तो कम न करता? इसी कमरे में तो वो खेलते हैं। इस कमरे में दादा-दादी की बड़ी-बड़ी चारपाइयां एक साथ लगी हुई हैं और उसी चारपाई पर बाबू और अनीत का महा साम्राज्य जमता है। ये चारपाई क्या दूसरी चारपाइयों जैसी है? बिल्कुल नहीं। इतनी बड़ी चारपाई, इतनी ऊंची चारपाई, इस पृथ्वी पर क्या कहीं और है? इतनी सुंदर, इतनी चौड़ी, इतनी ऊंची! बाबू अनीत के साथ दिन-भर यहां खेलता है। बड़े-बड़े खंभों जैसे पाए, उस पर पंजों जैसे नाखून खुदे हुए, उसके चारों सिरों पर बारहों महीने चार छत्र बंधे रहते हैं, जिन पर मच्छरदानी लगाई जाती है। चारपाई की चौड़ी और ऊंची पाटी पर अंगूरलता और पद्मलता की आकृति खुदी हुई है। उस पर चढ़ कर बाबू बड़े मजे से चल सकता है, वहां चढ़ने पर सिर पर लगी छतरी तक उसका हाथ भी पहुंच जाता है। चारपाई पर ही कितने खेल खेले जाते हैं। उसके नीचे घुस कर अंधेरे में खेल खेला जाता है। उसके ऊपर चढ़, तकिया और चादर ले खेलता है, मच्छरदानी गिरा कर खेलता है। कभी मच्छरदानी से तंबू बनता, कभी पाल, कभी जंगल और कभी राजघराना। अनीत और बाबू को सारे खेल आते हैं। इसके अलावा चारपाई के चारों ओर दौड़-दौड़ खेलते, चारपाई पर कूद-कूद

छलांग लगा खेलते, फिर चारपाई के पायों को पेड़ मान उस पर चढ़ते तरह-तरह के खेल खेलते।

चारपाई पर बाबू को बड़ा अभिमान है। अकसर वो बड़े गर्व से अनीत से कहता—'जानते हो अनीत, ये मेरे दादा-दादी के विवाह के समय की चारपाई है। ये देखो, ये मेरे दादा-दादी हैं।'—दीवार पर टंगी तसवीर में चंदन की माला पहने दादा-दादी अनीत की ओर देख-देख हंसते।—'देखा है? दादा बड़े भारी शिकारी थे। वो देखो, दीवार पर लगे हिरण के सारे सींग और बाघ के सारे चेहरे अकेले मेरे दादा के शिकार किए हुए हैं। हूं दादा! मैं भी बड़ा होकर दादा की तरह बड़ा शिकारी बनूंगा।'—अनीत ने बड़ी-बड़ी आंखों से निहार कर देखा और उसे बाबू के व्यक्तित्व में दादा जैसा बड़ा-भारी शिकारी दिखा। बाबू भी नई एयरगन ले जब शीशे के सामने खड़ा हो स्वयं को देखता तो वो भी स्वयं को एक बड़ा शिकारी मान बैठता, जिसे अनीत मुग्ध भाव से देखता।

बाबू और अनीत का ऐसा राजसी रूप कभी न जाता। दोपहर को इस कमरे में वे ही राजा होते। उस दिन जब वे कोलंबस-कोलंबस खेल रहे थे, मां दूध की डेकची हाथ में लिए ज्योंही कमरे में घुसी त्योंही बाबू चीख पड़ा—'ओ क्या मां, ओ क्या मां! सावधान। डूब जाओगी। यहां तो गहरा समुद्र है, अटलांटिक ओशन।'—'अनीत—जल्दी-जल्दी मां को एक जलडिंगी में डाल दो—मां, मां, जल्दी-जल्दी खड़ी हो जाओ, यही है 'लाइफबोट'।'—मां के सामने फर्श पर एक तकिया धम्म से गिरा।—'मां! ये लो लाइफबोट।'—सुन कर मां ने जोर से डपटा—'क्या हो रहा है बाबू? देख नहीं रहे हाथ में गरम दूध है! क्या ऐसे चौंकाया जाता है। अगर गिर पड़ता तो? मैं भी गिर पड़ती। हर समय खेलते ही रहते हो।'—उस दिन अनीत को थोड़ी-सी शर्म आई थी। बाद में बाबू को डांटा था—'सचमुच बाबू, तुम बड़ा हो-हल्ला करते हो। गरम दूध के पतीले का ध्यान रखना पड़ता है। अगर मां जल जाती तो?'—निश्चय ही मां की डांट-डपट से बाबू उस दिन निरुत्साहित न हुआ।

वो मां से एकदम बोला—'अच्छा मां, अब हम कोलंबस-कोलंबस नहीं खेलेंगे। अब हम समुद्र मंथन खेलें। तकिए को समझो मैनाक पर्वत और कमरे को मानो समुद्र और तुम बनो मोहिनी और तुम्हारे हाथ में जो है, उसे मानो अमृतकलशी, अच्छा? अनीत हुआ असुरों का राजा और मैं देवताओं का राजा। क्यों?'—मां हंस कर बोली—'सचमुच बाबू! तुमको नाटक करना भी आता है।'—बाबू चीख कर बोला—'बाबू। अब बाबू कौन? मैं इंद्र।'—ये वाला कमरा कभी सहारा बन जाता, कभी समुद्र, कभी महाकाश। यहां अनीत और बाबू का अंतहीन हो-हुल्लड़ मचता ही रहता, जब तक दीदी लौट न आएं। मां कहती—'कमरे की क्या हालत बना रखी है। इस चारपाई पर तो दिन-भर मानो युद्ध होता रहता हो।'—हर समय बात करना अच्छा लगता है क्या? कभी यह चारपाई बन जाती खानाबदोशों का तंबू, कभी जहाज, कभी 'एरोप्लेन'। कभी सचमुच का युद्धक्षेत्र। तकिया लेकर बाबू और अनीत का भयंकर युद्ध चलता ही रहता।

अनीत बड़ा स्नेही लड़का है, केवल यही उसका दोष है। जब तीन पहिएवाली साइकिल लेकर कमरे में साइकिल रिक्शा चलाता है, तब अनीत किसी भी कीमत पर रिक्शावाला नहीं बनना चाहता। वो केवल पैसेंजर बनता है। बेचारे बाबू को किसी भी दिन पैसेंजर बनने का मौका नहीं मिलता। वो बेचारा रोज-रोज रिक्शावाला बनता है। हालांकि जब बाबू खानाबदोश बनता है, तब अनीत कभी-कभी ऊंट बन जाता है। इसके अलावा अनीत कभी भी कोलंबस बनना नहीं चाहता। बाबू को कोलंबस बना कर अनीत केवल नाविक बन खुश हो जाता है। या फिर चांद पर पहुंच कर अनीत केवल 'रॉकेट' का ड्राइवर बन चंद्रमा के चारों तरफ चक्कर काटता है। बाबू वहां उतर कर चांद की धरती के पत्थर चुन लाता है। इन सब मामलों में अनीत वास्तव में बहुत अच्छा है। असभ्य बर्बर देश में जब बाबू अभियान छेड़ता है, तब अनीत होता है—उसका देहरक्षक। बाबू बनता है—फलूदा। अनीत कभी तापस, कभी जटायु।

पहले जब अनीत ईस्टबंगाल (पूर्वी बंगाल) का 'प्लेयर' बना—तब अनीत मोहनबागान का 'प्लेयर' बना। और मोहनबागान हमेशा हारता! अब चूंकि श्यामा थापा ईस्टबंगाल छोड़ चला गया है, इसलिए बाबू भी ईस्टबंगाल में नहीं है। श्यामा थापा चूंकि काका का मित्र है, इसलिए बाबू को श्यामा थापा के पक्ष में रहना अच्छा लगता है। बाबू मोहनबागान के पक्ष में फटाफट गोल करता है और बेचारा अनीत ईस्टबंगाल के पक्ष में रह कर

हमेशा गोल लेता है। हर खेल में यही होता है। चारपाई से छलांग लगा धप-धप जमीन पर गिरने के खेल में भी। उसमें भी वो बेचारा हर बार खाट के आस-पास ही गिरता है। कभी भी बाबू की तरह वो हनुमान जैसी छलांग लगा कर उस शीशेवाली अलमारी के पास तक नहीं पहुंच पाता। चारपाई की पाटी पर चढ़, चारपाई के सिरे पर लगे मच्छरदानी लगाने वाले डंडे को पकड़ जब वो 'ट्राम' बन चलते हैं, तब अनीत बनता है—'पैसेंजर' और बाबू को बना देता है—'कंडक्टर'। चारपाई के नीचे घुस कर जब वो स्कूल-स्कूल खेलते हैं, तब अनीत हमेशा छात्र होता है और बाबू हमेशा 'टीचर' (शिक्षक)। ये सब देखो तो अनीत जैसा अच्छा मित्र मिलना मुश्किल होता है।

फिर भी आजकल बाबू का मन उदास है। मां ने कहा था कि इस बार पूजा के उपलक्ष्य में बाबू को एक भाई 'प्रेजेंट' करेंगी। यही सोच बाबू बेहद चिंतित है। अनीत से कहता—'देखो अनीत, मेरे लिए एक भाई लाया जा रहा है। किसे मालूम भाई कैसा होगा? कौन जाने रुणटु के भाई जैसा दुष्ट शैतान होगा या नहीं। रुणटु का भाई तो बड़ा ही शैतान है। उसने रुणटु की सब किताबें-कापियां फाड़ दी हैं, रबर चबा डाली है। अगर पेंसिल हाथ में पड़ जाए तो कुछ पूछो ही मत, जमीन पर ठोक-ठोक उसकी नोक तोड़ देता है। कुछ कहने से कोई फायदा नहीं। कुछ कहते ही ऐसा चिल्लाएगा मानो बूथ साहब का बच्चा हो और रुणटु की मां दौड़ कर आ जाएंगी और डांटेंगी—रुणटु! भाई को फिर रुला रहे हो। भाई अनीत! मुझे तो बड़ा डर लग रहा है। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा। मुझे भाई-वाई कुछ नहीं चाहिए।'

अनीत चुपचाप सुनता रहता। फिर कुछ सोच कर कहता—'लेकिन बाबू! इसका मतलब ये तो नहीं कि सारे भाई इतने दुष्ट होंगे? अच्छे भाई भी तो होते हैं? तुम्हारा भाई तो अच्छा भाई हो सकता है। तुम्हें भैय्या-भैय्या कह कर बुलाएगा, तुम्हारी सारी बातें मन लगा कर सुनेगा, तुम्हारे साथ हमेशा खेलेगा, ऐसा भी तो हो सकता है?'—हां, अगर ऐसा हो तब तो निश्चय ही बाबू को कोई आपत्ति न होगी। फिर भी मन में शांति नहीं। कौन जाने, भाई कैसे स्वभाव वाला होगा? अच्छा होगा या दुष्ट होगा? जब तक वो घर न आ जाए तब तक ये जानने का तो कोई तरीका नहीं!

मां जब भाई को नर्सिंग होम से लाने गई तब अनीत ने बाबू का साथ क्षण-भर के लिए भी नहीं छोड़ा। हर क्षण उसे सांत्वना देता रहा—'देखो बाबू! तुम्हारा भाई बड़ा अच्छा होगा।'—निश्चय ही ईश्वर ने बाबू के मन की बात सुन ली। बाबू को भाई नहीं चाहिए, सुन कर ईश्वर ने उसके लिए एक बहन भेज दी। बहन लेकर मां जब घर लौटी, तो बाबू खुशी से फूल उठा। ओ मां! इत्ती-सी बहन है। ये तो गुड़िया जैसी लगती है। बाबू दौड़ कर गया और बरामदे के कोने की टूटी ईंट के छेद में मुंह डाल अनीत को बुलाया—'अनीत, अनीत!'—अनीत आया।—'जानते हो मेरी कितनी सुंदर एक बहन आई है! एकदम बिलायती गुड़िया जैसी। गुलाब के फूल जैसे हाथ-पैर और मुंह··· प्रदीप की पतली-पतली बातियों जैसी छोटी-छोटी उंगलियां, उंगलियों में नाखून भी हैं। उनसे भी छोटे-सफेद मानो रुई हो। इतनी छोटी-सी एक नाक, छोटे-छोटे होंठ और पोपला मुंह। मुंह एकदम पोपला है, हमारी उपले थापने वाली बुढ़िया जैसा। और मालूम है, भौंहें भी नहीं हैं। खाली कपाल पर इतनी बड़ी-बड़ी काली आंखें।'—अनीत ने अवाक् हो सुना—'आओ, देखोगे? आओ। कितनी सुंदर है।'—बहन बिल्कुल नहीं रोती, केवल भूख लगने पर आंव-आंव कर पुकारती है··· बिल्कुल बिल्ली के बच्चों की तरह।

बहन की बात अनीत चुपचाप सुनता रहा। चुपचाप खड़ा बहन को देखता रहा। बाबू उच्छ्वास-भरे स्वर में बोला—'लेकिन! बाप रे बाप, अगर इसकी नींद टूट जाए तो इतना भयंकर बवाल मचेगा।'—बहन भी बूथ साहब का बच्चा बनना जानती है। इसलिए मां ने दोपहर को शोर मचाने से मना किया है। चारपाई पर खेलना मना। चारपाई से उछलना मना। क्योंकि बहन चौंक पड़ती है। बाबू और अनीत दादा-दादी के विवाह के अवसर पर मिली चारपाई पर अब और नहीं खेल सकते। उनके खेलने की जगह के ठीक बीचोबीच दो तरफ दो तकियों से दीवार जैसे घेरे के बीच एकदम राजकन्या की तरह बहन नरम-नरम गुड़िया-सी सोई पड़ी रहती है। मां कहती है—'बाबू, बहन का जरा ध्यान रखना। दोपहर में शैतानी मत करना। बहन रोए नहीं।'

और बाबू क्या कहता? बाबू घुटने टेक, उचक कर, कुहनी के बल बैठ, दोनों हथेलियां गाल पर रख बड़ी-सी

काली चींटी जैसा बन बहन के पास बैठता। बैठ कर कहता—'ओ मेरी बहन, बहनिया, धनधनिया, मनमनिया, टुनटुनिया। ओ मेरी कुतूर-कातूर, पुतुर-पातूर, इल्लू, बिल्लू, गिल्लू, ओ मेरी सुंटि-मुंटि बहन।'—उसके प्यार का तरीका देख मां हंसती नहीं, बल्कि सोचती कि लो, इसने तो अच्छी कविता बना डाली। बाबू को अब अनीत के साथ खेलने का समय बिल्कुल न मिलता। खेले कब? बहन का ध्यान रखना पड़ता है। बाबू अगर ध्यान न रखे तो बहन का ध्यान कौन रखेगा? दीदी तो स्कूल चली जाती है। मां को कितने-सारे काम करने पड़ते हैं। बाबू बहन के पास से हिलता तक नहीं। बहन को वो कहानियां सुनाता रहता है। कहता—'बहन सोना है, चांद का कोना है। तुम्हें मालूम है तुम कौन हो? तुम हम सबकी 'स्नो-व्हाइट' हो। लेकिन, तुम्हारी कहानी कुछ अलग है। तुम्हारी कथा में कोई दुख नहीं। केवल अच्छी-अच्छी बातें हैं। तुम्हारी कोई विमाता नहीं। और मेरे जैसा बड़ा भाई है तो तुम्हें किस बात की चिंता? संसार की किसी भी डायन में ये शक्ति नहीं कि वो तुम्हारा जरा-सा भी नुकसान कर दे। आने दो ना, मैं डायन को देख लूंगा। 'एयरगन' से एक मिनट में ही उसे उड़ा दूंगा। तुम डरना मत बहन! उपले पाथनेवाली डायन जैसी दिखाई तो देती है, लेकिन असल में वो बड़ी अच्छी औरत है। तुम्हारे जैसी ही पोपली है। वो जैसे ही हंसेगी तुम समझ लोगी कि वो डायन नहीं। बहन, जानती हो! जैसे ही तुम थोड़ा बड़ी होगी, वैसे ही तुम्हें घोड़े की पीठ पर बैठा कर मैं साइबेरिया घुमाने ले जाऊंगा। सा-इ-बे-रि-या, उड़ंतू हंस जहां उड़ कर चले जाते हैं और फिर लौट आते हैं··· वो बहुत-बहुत दूर है।' बहन कुछ कहती नहीं। केवल फिक-फिक कर हंस देती और अपनी गोल-गोल मुट्ठियां घुमा कर बाबू के लंबे-लंबे गुच्छेदार बालों की चुटिया पकड़ अन्यमनस्क भाव से खींचती। बाबू चीख पड़ता—'ऊ ई ई ई ई···बहन। ये क्या भाई, ये क्या भाई, बाल मत खींचो, छीः।'—लेकिन, उस पर गुस्सा कैसे करे? बहन तो एकदम रसगुल्ले जैसी है। गोल-गोल बन सोई पड़ी रहती है। चारों हाथ-पैर एक साथ शून्य में चलाती रहती है। दोनों पैर दो मुट्ठियों से पकड़ नाक के सामने ले जा गंभीर भाव से देखती रहती है। यह सब देख बाबू की हंसी न थमती।

—'ओ बहन री! ओ पुंटि-मुंटि, कुंति-खुंति ओ कतर-मतर-फतर, एक बार बड़ी हो जाओ ना। तुम्हें मैं अपने रिक्शे में 'पैसेंजर' बना बैठा लूंगा। देखो ना! और 'रॉकेट' चलाते समय तुम्हें बनाऊंगा 'को-पायलट'··· क्यों? और जब तुम 'क्रिकेट' खेलना सीखोगी तब बीच-बीच में तुम 'एम. सी. सी.' और कभी मैं 'एम. सी. सी'···क्यों?'—बहन सारी बातें सुन हाथ-पैर चलाते-चलाते हंसती। कुछ कहती नहीं।

बहन को देखने मामा आए। बाबू की मुट्ठी में टॉफी दे बोले—'दिखाओ, दूसरा हाथ दिखाओ। ये अनीत की टॉफी—'

बाबू ने थोड़ा-सा शरमा कर हलके-से मुसकरा कर बताया—'अनीत? अनीत अब नहीं आता मामा।'

—'क्यों क्या हुआ उसे?'—मामा ने चिंतित हो प्रश्न किया।

बाबू शून्य भाव से बोला—'उसके यहां भी एक बहन हुई है। खेलेगा कब? बहन का ध्यान रखना पड़ता है ना? बल्कि आप बहन के लिए ही एक टॉफी दो, दांत निकलने पर खाएगी।' ❖

कृपया ध्यान दें

जैन भारती के लिए रचनाएं भेजते समय कृपया निम्नोक्त बिंदुओं का अवश्य ध्यान रखें—

- आपकी रचना कम से कम 1500-2000 शब्दों से लेकर 2500-3000 शब्दों के मध्य हो। कुछेक आलेख जैन भारती के एक पृष्ठ से भी कम आकार के होते हैं, जो हमारे लिए अपर्याप्त हैं। जैन भारती के लिए ऐसे आलेख काम में लेना संभव नहीं। अतः इतने छोटे आलेख न भेजें।
- रचनाएं 'फुलस्केप' कागज पर एक तरफ हाथ से लिखी या टाइप की हुई हों। पूरा हाशिया अवश्य छोड़ें। दो पंक्तियों के बीच भी पर्याप्त स्थान होना जरूरी है।
- फोटोकॉपी न भेजें अथवा सुस्पष्ट हो तो ही भेजें।

कृपया उपरोक्त हिदायतों की ओर पूरा ध्यान देकर हमें सहयोग करें।

उनसे मिलता था शांति, मैत्री और अहिंसा का संदेश

—आचार्यश्री महाश्रमण

उर्वर चिंतन, त्यागमय जीवन, अद्‌भुत समर्पण एवं अद्वितीय कर्मजा शैली उनके कालजयी अवदान

—महासभा अध्यक्ष चिंडालिया

❑❑❑

'कुछ व्यक्ति इतिहास का सृजन करते हैं, लेकिन कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं—जिनसे इतिहास निर्मित होता है। इतिहास-पुरुष के रूप में वंदनीय होने वाले व्यक्ति विरले ही होते हैं। उन विरल-पुरुषों की प्रथम पंक्ति में अंकित व्यक्तित्व का नाम है—**आचार्यश्री महाप्रज्ञजी**। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी आत्मद्रष्टा थे, युगद्रष्टा थे, भविष्यद्रष्टा थे। आत्मद्रष्टा के रूप में उन्होंने धर्म और अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों को आत्मसात किया, युगद्रष्टा बन कर युगीन समस्याओं का शाश्वत समाधान दिया और भविष्यद्रष्टा बन कर ऐसे अवदान दिए जो एक सुखद भविष्य को सुनिश्चित कर सकें।'

आचार्य महाप्रज्ञ स्मारक स्थल शिलान्यास समारोह

'पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी हमारे बीच नहीं हैं। आज भी हमें यह विश्वास नहीं होता। वस्तुतः वे हमारे बीच ही हैं, उनकी स्नेहिल छांव आज भी हमारे ऊपर है—सतत प्रवाहित ऊर्जा के रूप में, चैतन्य रश्मियों के रूप में आज भी हमारा मार्गदर्शन कर रही है। उनके अनगिनत अवदानों से मानवता को त्राण मिल रहा है, नव ऊर्जा का संचरण हो रहा है और उसी ऊर्जा से पूरा धर्मसंघ विकासोन्मुख है।'—अपनी इस विनम्र भावाभिव्यक्ति के साथ **जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया** ने महासभा परिवार की ओर से उस महापुरुष को सादर भावांजलि दी और कहा—'ऐसे युगांतकारी महापुरुष के अवदानों को तेरापंथ धर्मसंघ की यशस्वी परंपरा के 11वें आचार्य के नेतृत्व में नया वातायन मिला है। **आचार्यश्री महाश्रमणजी** के निर्देशन में उनके उर्वर चिंतन, त्यागमय जीवन, अद्‌भुत समर्पण एवं अद्वितीय कर्मजा शैली से आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के कालजयी अवदान चिरकाल तक संपूर्ण विश्व को सही राह प्रदान करते रहेंगे।'—श्री चिंडालिया ने ये उद्‌गार **18 नवंबर, 2010 को सरदारशहर में 'आचार्य महाप्रज्ञ स्मारक'** के शिलान्यास के अवसर पर प्रकट किए।

18 नवंबर, 2010 को प्रातः 7.15 बजे **'आचार्य महाप्रज्ञ स्मारक स्थल'** का शिलान्यास अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद के संस्कारकों ने जैन संस्कार-विधि-पूजन के साथ संपन्न किया। इस अवसर पर हुए समारोह में देश के विभिन्न क्षेत्रों से समाज के विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित थे। 'आचार्य महाप्रज्ञ स्मारक स्थल' के शिलान्यास की प्रथम शिला तेरापंथ धर्मसंघ की शीर्षस्थ संस्था **जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री चैनरूप चिंडालिया** ने रखी। तत्पश्चात् महासभा के प्रधान न्यासी **श्री राजेंद्र बच्छावत**, जैन विश्व भारती के अध्यक्ष **श्री सुरेंद्र चोरड़िया**, चातुर्मास व्यवस्था समिति के अध्यक्ष **श्री सुमतिचंद गोठी** तथा सरदारशहर के बच्छावत परिवार की ओर से **श्री प्रकाशचंद बच्छावत, श्री संतोष कुमार दूगड़, श्री रूपचंद दूगड़, श्री इंद्रचंद दुधेड़िया, श्री प्रकाशचंद बैद, श्री मनोजकुमार लूणिया, श्री अशोक चोरड़िया, श्री सुरेंद्रकुमार सुराणा,** महासभा के सांगठनिक व्यवस्था के संयोजक **श्री विजयसिंह चोरड़िया,** अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मंडल की अध्यक्षा **श्रीमती कनक बरमेचा,** महासभा के महामंत्री **श्री भंवरलाल सिंघी** और समाज के विशिष्ट श्रावक **श्री मूलचंद बोथरा** सहित समाज के अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने शिलापूजन किया।

इस अवसर पर **आचार्यश्री महाश्रमणजी, साध्वी-प्रमुखाश्री कनकप्रभाजी, मुख्यनियोजिका विश्रुतविभाजी** आदि पूरे धर्मसंघ के साथ स्मारक स्थल पर पधारे और ध्यान मुद्रा में स्थित होकर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का स्मरण किया।

इस अवसर पर **आचार्यश्री महाश्रमणजी** ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि—'आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के स्मारक स्थल का शिलान्यास सीधा हमारे से जुड़ा प्रसंग नहीं है, यह समाज का कार्य है। स्मारक स्थल में अनेक अनुदानदाताओं के नाम की घोषणा हुई है, अनुदान कोई भी दे, पर इस पवित्र स्थल के आस-पास अनुदानदाता का नाम नहीं लगना चाहिए।' आपने आगे कहा कि— 'आचार्यश्री महाप्रज्ञजी, जो प्रतिक्षण श्रुतोपासना में रहते थे, उनमें संयम की साधना थी, वत्सलता थी, करुणा थी। मुझे दो गुरुओं का योग मिला। जिन्हें मैं धर्माचार्य कहता हूं—उनमें **आचार्यश्री तुलसीगणी** एवं **आचार्यश्री महाप्रज्ञजी** थे। तेरापंथ के दस आचार्यों में सर्वाधिक आयुष प्राप्त करने वाले आचार्यश्री महाप्रज्ञजी थे। उन्होंने लंबे समय तक धर्मसंघ की सेवा की और जन-जन को शांति, अहिंसा एवं मैत्री का संदेश दिया। इस मौके पर आचार्यप्रवर ने—**'पूज्य महाप्रज्ञ भगवान'**—गीत का संगान भी किया। **साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी** एवं **मुख्य-नियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी** ने कहा कि— इस स्थान पर आने वालों को ऐसी प्रेरणा मिले कि वे तनावमुक्त रहें और अपने जीवन को शांत व संयममय बना सकें।

जैन विश्व भारती के अध्यक्ष **श्री सुरेंद्र चोरड़िया** ने भी अपनी श्रद्धाभिव्यक्ति प्रकट की। महासभा के महामंत्री **श्री भंवरलाल सिंघी** ने कहा कि जिस स्थल के कण-कण से अध्यात्म के स्वर गूंज रहे हैं, वह स्थल लोगों को विशेष ऊर्जा प्रदान करने वाला सिद्ध हो।

इस मौके पर यूक्रेन के पॉप सिंगर **अलेक्जेंडर** ने अपने सुमधुर गीत से सबको मंत्रमुग्ध कर दिया।

महासभा अध्यक्ष **श्री चिंडालिया** ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की समाधि के निर्माण का दायित्व जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा को प्रदान करने पर महासभा परिवार की ओर से परमपूज्य **आचार्यश्री महाश्रमणजी** के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित की। **श्री चिंडालिया** ने स्मारक स्थल की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए अपनी भावाभिव्यक्ति में कहा कि—'परम यशस्वी, परम प्रतापी आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का समाधि स्थल जीवंतता लिए हुए हो, यह कला की अद्वितीय बानगी हो और आमजन की आस्था व आकर्षण का केंद्र हो। यहां आकर भटकते पंछी को नीड़ में विश्राम की भांति आतप से मुक्ति मिले—ऐसा महासभा का प्रयास रहेगा। यह समाधि स्थल संघीय मर्यादा एवं गरिमा तथा श्रद्धालुओं की भावनाओं के अनुरूप बने—महासभा का ऐसा भी प्रयास रहेगा।'—उन्होंने प्रस्तावित स्मारक स्थल का 'शब्द-चित्र' भी उपस्थित जनों के सम्मुख रखा और बताया—

'इस समाधि स्थल पर छह विशाल कक्ष निर्मित किए जाएंगे। **प्रथम कक्ष** श्रव्य-दृश्य कक्ष होगा, जिसमें आचार्यश्री महाप्रज्ञजी से संबंधित 'डॉक्यूमेंट्री' का प्रसारण एवं अन्य श्रव्य-दृश्य सामग्री उपलब्ध होगी। **दूसरा कक्ष** पूज्यप्रवर को उपहृत किए गए विभिन्न उपहार एवं स्मृति-चिह्नों से सज्जित होगा। **तीसरा कक्ष** कलावीथि के रूप में होगा, जिसमें पूज्यप्रवर से संबंधित पेंटिंग्स आदि का प्रदर्शन होगा। **चौथा कक्ष** पुस्तकालय सह शोधकेंद्र होगा, जिसमें पूज्यप्रवर द्वारा सृजित एवं उनसे संबंधित साहित्य का संकलन होगा तथा शोधकार्य की व्यवस्था भी होगी। **पांचवां कक्ष** 'रोबोटिक सेंटर' होगा, जिसमें आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के विभिन्न व्याख्यानों का रोबोटिक प्रदर्शन होगा। **छठा कक्ष** ध्यान-कक्ष के रूप में निर्मित किया जाएगा। इन विशाल कक्षों के अतिरिक्त मुख्य समाधि के चारों ओर 4,000 वर्गफुट का स्थान श्रद्धालुओं के **उपासना-स्थल** के लिए होगा, जहां बैठ कर वे आध्यात्मिक प्रवृत्तियां कर सकेंगे। इस स्थान के चारों ओर 2,000 व्यक्तियों के बैठने के लिए **'ओपन-थिएटर'** होगा, यहां भी विभिन्न गतिविधियां संचालित की जा सकेंगी। समाधि के पृष्ठ में बारह कमरों का एक **आवासीय ब्लॉक** निर्मित किया जाएगा। इसी के साथ एक **कैंटीन** तथा कार्मिकों के **आवास कक्ष** होंगे।'

'पूरा भू-भाग सुरम्य एवं अध्यात्ममय हो—इस हेतु पूरी भूमि पर 'लैंडस्केपिंग', उद्यान, सौंदर्यीकरण, बिजली व्यवस्था आदि पर भी विशेष ध्यान दिया जाएगा। समाधि-स्थल के प्रवेश के समीप ही **'पार्किंग'** सुविधा, **'बुक स्टॉल'** तथा **कार्यालय-कक्ष** होंगे।'

'संपूर्ण समाधि स्थल को इस प्रकार से विकसित किया जाएगा कि जिससे यह श्रद्धालुओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक स्थल के रूप में उभर कर सामने आए तथा यहां आकर श्रद्धालु शांति का अनुभव करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की शिक्षाओं से अपने जीवन की सही राह प्रशस्त कर सकें।'

श्री चिंडालिया ने स्मारक-स्थल की एक जीवंत छवि प्रस्तुत करते हुए फिर यह बात दोहराई—'महासभा परिवार पुनः आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के प्रति सादर भावांजलि समर्पित करता है तथा आचार्यश्री महाश्रमणजी के प्रति सादर अभिवंदना एवं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता है।'—उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण कार्य में सहयोग प्रदान करने वाले समस्त अनुदानदाताओं के प्रति भी हार्दिक आभार ज्ञापित किया तथा संपूर्ण श्रावक-श्राविका समाज से इस महायज्ञ में अपना सहयोग एवं सहभागिता हेतु अपील की।

महासभा के उपाध्यक्ष **श्री रतन दूगड़** ने आभार प्रकट किया। कार्यक्रम का संचालन महासभा के महामंत्री **श्री भंवरलाल सिंघी** ने किया। ❖

गिरिजाकुमार माथुर की कविताएं

•

अर्थ-शून्य

लगता है अब
हर बात से
बड़ा अर्थ कोई कट गया
लगता है
एकबारगी
सब-कुछ ही गलत हो गया
जैसे—
फूल को फूल कहने से हिचकना
पूरी बात में से
कुछ थोड़ी बात बचा रखना
साफ कहने में कुछ इस तरह कतराना
मानो कर रहे हों आप
कोई काम मुजरिमाना

अब इरादों, दिलासों और दावों का
सब को खूब नाटक
करना आ गया है
अब कर्म की जगह
सिर्फ शब्द आ गया है।

•

असिद्ध की व्यथा

नदियां, दो-दो अपार
बहतीं विपरीत छोर
कब तक मैं दोनों धाराओं के साथ बहूं
ओ मेरे सूत्रधार!

नौकाएं दो भारी
अलग दिशाओं जातीं
कब तक मैं दोनों को एक साथ खेता रहूं—
एक देह की पतवार—

दो-दो दरवाजे हैं
अलग-अलग क्षितिजों में
कब तक मैं दोनों की देहरियां लांघा करूं
ओ असिद्ध,
एक साथ
छोटी-सी मेरी कथा
छोटा-सा घटना-क्रम
हवा के भंवर-सा पलव्यापी यह इतिहास
टूटे हुए असंबद्ध टुकड़ों में बांट दिया
तुमने
ओ अदृश्य, विरोधाभास!

अध-भोगे
अध-डूबे
रहे सभी कथा-खंड
दूरी से छू कर ही निकल गईं घटनाएं
भीतर बहुत सूखा रहा
हवा नहीं सराबोर
देह भी न भीगी कभी इस प्रकार
कि सांसें न समा पाएं
क्यों सारी दुनिया को
मनचीती बातें सभी
लगती रहीं मलीन
क्यों मन की दूर तहों में बैठा रहा, अडिग
ऊसर एक उदासीन
हंसने का नाट्य किया
खुशियों का रूप धरा
कोरी आदत को सचाई माना मैंने
मेरे अनबींधे, बुझे
आसक्तिहीन प्यार!
एक ओर तर्क है
एक ओर संस्कार
दोनों तूफानों का
दुहरा है अंधकार
किस को मैं छोड़ूं
किस को स्वीकार करूं
ओ मेरी आत्मा में ठहरे हुए इंतजार! ❖

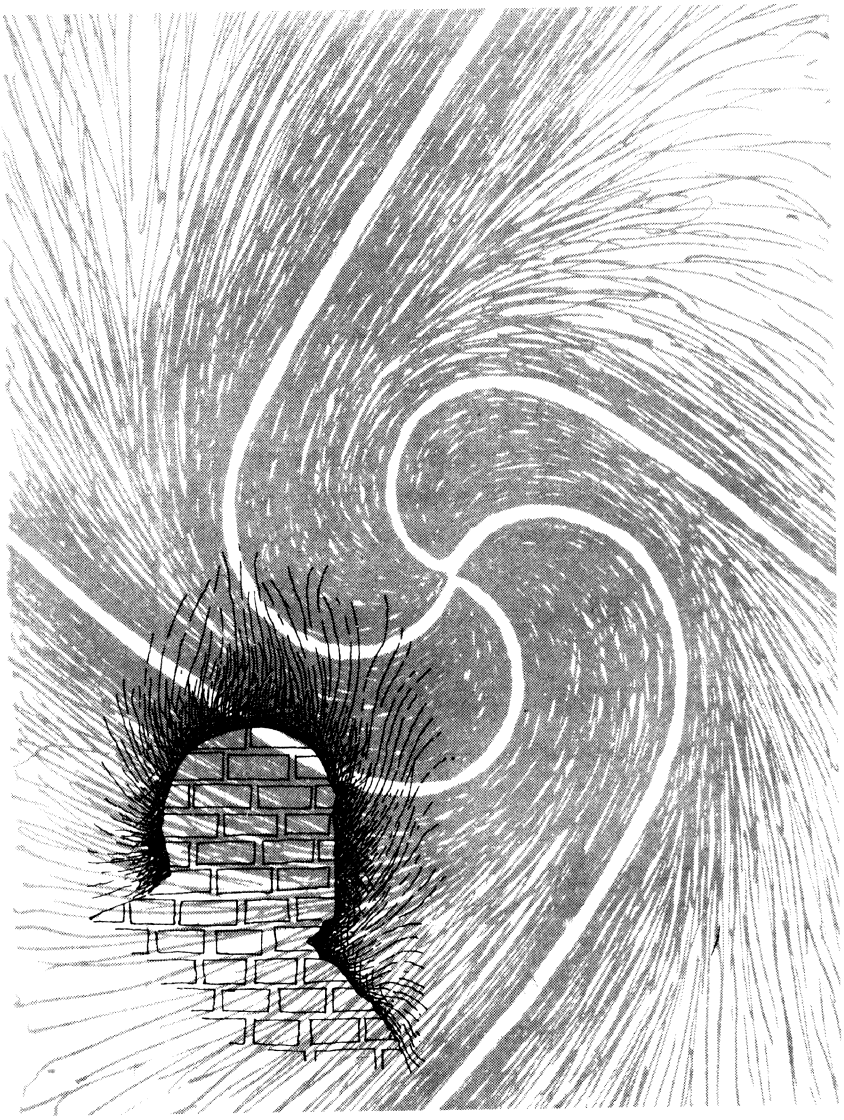

शीलन

आत्मा शरीर के स्थूल अंगों अथवा इंद्रियों के समान नहीं है। वह शरीर के किसी विशेष भाग में स्थित भी नहीं है। वह स्थूल शरीर और मन में ओत-प्रोत है। जब तक मन स्वच्छ नहीं है, वह उससे अलग नहीं मालूम होगा और न ज्ञात ही होगा। किसी बाह्य वस्तु को देखना एक बात है, परंतु शरीर के अंदर छिपे हुए और उसमें ओत-प्रोत आत्मा को देखना बिल्कुल भिन्न है। आत्म-निरीक्षण से हम अपने मन का विश्लेषण कर सकते हैं, परंतु आत्मा को देखने के लिए न केवल अपनी आंखों को अंदर की ओर घुमाने, वरन मन को स्थिर तथा विकाररहित करने की भी आवश्यकता होती है। पवित्रता और अलिप्तता के बिना माध्यम मलिन रहता है और उसके पृष्ठ की वस्तु दिखलाई नहीं पड़ सकती। हमारी दृष्टि को अंध बनाने वाला अज्ञान नहीं होता, कामनाएं और आसक्तियां होती हैं। इस सत्य का अनुभव कर लेने पर ज्ञात हो जाएगा कि अंतर्निहित आत्मा के साक्षात्कार के लिए सदाचारी जीवन तथा पवित्र हृदय की आवश्यकता क्यों होती है।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

❑❑

जैन दर्शन की यह स्थापना शताब्दियों पुरानी है। विज्ञान आज भी उस दिशा में अन्वेषण रत है। भगवान महावीर द्वारा प्रदत्त यह अवधारणा अंतरदर्शन या विशेष ज्ञान से प्रसूत है। जबकि वैज्ञानिक सूक्ष्म एवं अतिसूक्ष्म उपकरणों के सहारे निरंतर शोध, प्रयोग एवं अनुसंधान कर रहे हैं। भगवान महावीर ने शताब्दियों पूर्व अनेक ऐसे मौलिक सूत्र (Concept) दिए—आकाश की अनंतता, काल (Time–समय) की सूक्ष्मातिसूक्ष्मता, पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि की सजीवता, गति और स्थिति के माध्यम की विद्यमानता आदि। इस दृष्टि से विज्ञान ने जो कार्य किया है, उसे अत्याधुनिक उपकरणों एवं संवेदनशील संसाधनों से सिद्ध भी किया है। कृष्णराजि और तमस्काय का जो विवेचन 'भगवई' आदि जैन ग्रंथों में उपलब्ध है, वह आधुनिक ज्योति-भौतिकविदों (Astro-phisicists) के लिए अनेक नए आयामों को उद्घाटित करने वाला है।

कृष्णविवर क्या वास्तविक है

साध्वी डॉ. यौगक्षेमप्रभा

इस विशाल लोक में अनगिनत रहस्य समाहित हैं। साक्षात ज्ञान के आलोक में प्रत्यक्ष द्रष्टाओं ने उन्हें देखा और प्ररूपित भी किया है। विद्या के अनेक गहन रहस्यों में तमस्काय भी एक है। भगवान महावीर ने इसकी व्याख्या की है। तत्त्वविज्ञान, जीवविज्ञान, कर्मविज्ञान और लोकविज्ञान के महाकुंभ **'विवाह पण्णति'** में इसका सविस्तार विवेचन है। 'भगवई' नाम के जैन आगम में जीव और जगत से संबद्ध हजारों प्रश्नों के अनंतर 'तमस्काय' एवं 'कृष्णराजि' का विशद विवरण उपलब्ध है।[1] इन दोनों की सरस एवं गहन व्याख्या वैचित्र्य की द्योतक है।

'तमस्काय' और 'कृष्णराजि'—दोनों में नाम की साम्यता प्रकट होती है। दोनों ही अंधकार समूह के द्योतक हैं। तथापि उनके स्वरूपों और विवेचनों में विविधता है। तमस्काय का अर्थ है—अंधकारमय पुद्गलों का समूह। यह उदक रजःस्कंधरूप है।[2] चूंकि जल अप्रकाशक होता है, अतः तमस्काय भी अप्रकाशक है। तमस्काय का आकार नीचे से मिट्टी के सकोरे के तल का, ऊपर से मुर्गे के पिंजरे जैसा है।[3] तमस्काय के समुत्थान और संस्थिति संबंधी जिज्ञासा के समाधान में भगवान महावीर कहते हैं—'गौतम! जंबूद्वीप से बाहर तिर्यग् दिशि में असंख्यद्वीप समुद्रों के पश्चात् अरुणोदय समुद्र है। उसमें बयालीस हजार योजन अवगाहन करने पर जल के ऊपर के सिरे से एक प्रदेशवली (समभिति आकारवाली) श्रेणी निकली है। यहां से तमस्काय उठता है। वह सतरह सौ इक्कीस योजन ऊपर जाने के बाद तिरछा फैलता हुआ सौधर्म, ईशान, सनतकुमार और माहेंद्र—इन चारों देवलोकों को घेरता हुआ पंचम देवलोक (ब्रह्मलोक) के रिष्ट-विमान के प्रस्तर तक पहुंच जाता है। यही उसका आखिरी छोर है।[4] तमस्काय के दो प्रकार हैं—(1) संख्येय योजन विस्तृत और (2) असंख्येय योजन विस्तृत। संख्यात विस्तृत तमस्काय की चौड़ाई (विष्कंभ) संख्यात हजार योजन है।

इसकी परिधि असंख्यात हजार योजन है। असंख्येय विस्तृत तमस्काय के विष्कंभ और परिक्षेप—दोनों असंख्यात हजार योजन हैं। यह इतनी विशाल है कि अपनी उत्कृष्ट दिव्यगति से चलने वाला देव छह माह में भी संख्येय विस्तृत का अतिक्रमण कर सकता है। असंख्येय विस्तृत का नहीं।[5]

तमस्काय में न घर है, न दूकान। न ग्राम है, न नगर या सन्निवेश, तथापि वहां मेघ उमड़ते हैं, गरजते हैं, बरसते हैं। विद्युत भी चमकती है। देव, असुर या नागकुमार ये कार्य करते हैं।[6] विग्रह गति समापन्न बादर-(स्थूल) पृथ्वीकाय या अग्निकाय को छोड़कर न बादर-पृथ्वी है और न ही बादर-अग्नि। यह पानी, जीव और पुद्गल का परिणाम है। जलरूप होने से वहां बादर-वायु, वनस्पति और त्रस जीवों की उत्पत्ति होती है।[7]

तमस्काय में सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र आदि भी नहीं होते। परिपार्श्व में सिर्फ सूर्य, चंद्र की आभा पड़ती है, किंतु तमस्काय में आकर वह भी धुंधली पड़ जाती है। यह काला, भयंकर काला, रोमहर्षक तथा त्रासदायक है। देवता भी उससे घबरा जाते हैं। यदि साहस कर भूल से घुस भी जाते हैं, तो अति तीव्र वेग से बाहर निकल आते हैं।[8] तमस्काय के तेरह नाम हैं—यथा अंधकार, महांधकार, लोकांधकार, देवांधकार आदि।

कृष्णराजि

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, ये कृष्णबहुल हैं। ये भी वर्ण से काली, गंभीर रोमांच उत्पन्न करने वाली, उत्त्रासक और परमकृष्ण है।[9] कृष्णराजि में भी घर, दूकान, मकान, ग्राम, नगर या बस्तियां नहीं हैं। इनमें विग्रह गति, समापन्न बादर-अपकाय, तैजसकाय और वनस्पतिकाय के अतिरिक्त अप, तैजस और वनस्पति की उत्पत्ति नहीं होती, किंतु पृथ्वी, वायु तथा त्रसकायिक जीवों के रूप में सभी प्राण, भूत, सत्त्व और जीव अनेकशः या अनंतशः उत्पन्नपूर्व हैं।[10]

कृष्णराजि की संस्थिति सनत्कुमार और माहेंद्र-कल्प (तीसरे-चौथे देवलोक) से ऊपर ब्रह्म देवलोक के रिष्ट-विमान प्रस्तर के समानांतर आखाटक के आकार में समुचतुरस संस्थान में हैं। चारों दिशाओं में दो-दो कृष्णराजि होने से कुल आठ कृष्णराजियां हैं। पूर्व और पश्चिम की बाहरी कृष्णराजियां षट्कोण हैं। दक्षिण और उत्तर की बाहरी कृष्णराजियां त्रिकोण हैं। सभी भीतरी कृष्णराजियां चतुष्कोण हैं। इनका आयाम असंख्येय हजार योजन, विष्कंभ संख्येय हजार योजन और परिधि असंख्येय हजार योजन है।[11]

कृष्णराजि की विराटता से संबद्ध जिज्ञासा के समाधान में भगवान महावीर कहते हैं—'यह जंबूद्वीप एक लाख योजन आयाम और विष्कंभवाला तथा परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अठाईस धनुष, साढ़ा तेरह अंगुल से कुछ अधिक है। कोई महाऋद्धिमंत देव तीन बार चुटकी बजाने जितने समय में जंबूद्वीप की इक्कीस बार प्रदक्षिणा (घूमकर आ जाए) कर सकता है। वह पंद्रह दिन तक उस गति से लगातार चलता हुआ भी किसी कृष्णराजि का अतिक्रमण कर जाता है, किसी का नहीं। इस उपमा से हम कृष्णराजि की विशालता का अनुमान ही कर सकते हैं।[12]

इन कृष्णराजियों में भी बड़े मेघ उठते हैं, गरजते हैं तथा बरसते हैं। विद्युत भी होती है। देवता ये कर्म्य करवाते हैं।[13] सूर्य, चंद्र आदि की उपस्थिति वहां भी नहीं होती। यह स्थान ज्योतिष-चक्र से बहुत ऊपर होने से उसकी आभा भी नहीं पड़ सकती। कोई देव भी उसे देखते ही क्षुब्ध हो जाता है। यदि वह उनमें प्रविष्ट हो भी जाता है तो अतिशीघ्र बाहर चला आता है।

तमस्काय और कृष्णराजि : साम्य और वैषम्य

कृष्णराजि और तमस्काय में समानताएं हैं, तो विषमताएं भी हैं। जैसे—1. वर्ण की दृष्टि से दोनों ही गहन अंधकार-रूप हैं। दोनों की भयावहता भी समान है। दोनों ही इस लोक के ऐसे स्थान विशेष हैं, जहां सघन कृष्णता या तम परिव्याप्त है। इनका निर्माण उन पुद्गल स्कंधों से हुआ है, जहां प्रकाश की अति सूक्ष्म रश्मियां भी आर-पार नहीं हो सकतीं। विज्ञान द्वारा परिकल्पित/सम्मत कृष्ण-विवर से इनकी तुलना हो सकती है। 2. विशालता की दृष्टि से तमस्काय की लंबाई निर्दिष्ट नहीं है, पर कृष्णराजि की लंबाई (आयाम) असंख्य हजार योजन है। चौड़ाई की अपेक्षा कृष्णराजि संख्यात हजार योजन परिमाण है। जबकि तमस्काय दो प्रकार की है—संख्यात हजार योजन और असंख्यात हजार योजन। परिधि दोनों की समान है। 3. आवास की दृष्टि से वहां (दोनों में) घर, मकान, दूकान, ग्राम, नगर आदि नहीं होते। 4. भयावहता की दृष्टि से दोनों में एकरूपता है।

भूल कर भी कोई दिव्य-शक्ति संपन्न देव भी उसमें स्थित नहीं रह सकता।

इन समानताओं के साथ ही उन दोनों में कई दृष्टियों से असमानताएं भी दृष्टव्य होती हैं। यथा ये हैं— 1. द्रव्यतः दोनों में अंतर है। तमस्काय जहां अपकायिक है, वहां कृष्णराजि मुख्यतः पृथ्वीकायिक है। 2. जीव सृष्टि की अपेक्षा से तमस्काय में बादर-पृथ्वीकाय और बादर-तैजसकाय नहीं होती। कृष्णराजि में बादर-अपकाय, बादर-तैजसकाय एवं बादर-वनस्पतिकाय नहीं होती है। बादर-वनस्पतिकाय चूंकि अपकाय सापेक्ष होती है, अतः बिना जल के वनस्पति का पल्लवन नहीं हो सकता। कृष्णराजि में बादर-अपकाय का सर्वथा अभाव होने से वनस्पति का भी अभाव है। 3. सूर्य, चंद्र आदि ग्रह गण का दोनों में सर्वथा अभाव है। तथापि तमस्काय में सूर्य, चंद्र आदि की धुंधली आभा होती है। तमस्काय की उत्पत्ति तिर्यकलोक से होने के कारण सूर्य-चंद्र के परिपार्श्व से होती हुई ऊपर पंचम देवलोक तक जाती है। अतः पार्श्ववर्ती होने से उनकी आभा जरूर पड़ती है। तमस्काय की तम-बहुलता से वह प्रभावत होकर भी नहीं होने जैसी है, किंतु कृष्णराजि में उनकी प्रभा नहीं पाई जाती। कृष्णराजियां ज्योतिषचक्र से बहुत ऊपर हैं। सूर्य, चंद्र आदि उनसे बहुत ही नीचे रह जाता है। 4. तमस्काय और कृष्णराजि—दोनों में बड़े मेघ उठते हैं, गरजते हैं और बरसते भी हैं। तमस्काय में स्थूल गर्जन और विद्युत देव, असुरकुमार और नागकुमार (भविनपति देव) करते हैं। वहीं कृष्णराजि में यह प्रक्रिया सिर्फ देव ही निष्पन्न करते हैं, असुरकुमार या नागकुमार नहीं।

ब्लैकहोल

ब्लैकहोल एक ऐसा मृत ग्रह है, जिसकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति इतनी अधिक है कि यह हर वस्तु को अपनी ओर खींच लेता है। ब्रह्मांड में सबसे तीव्र गति से चलने वाला प्रकाश भी इसके गर्भ में जाने से नहीं बच पाता है।[14] चूंकि ब्लैकहोल हर तरह के प्रकाश को खींच लेते हैं और वे वास्तव में अंधियारे होते हैं। आस-पास की वस्तुओं में उनके गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव को देख कर ही उनकी उपस्थिति का आभास हो सकता है। डॉक्टर फ्रिटजोफ कापरा के अनुसार[15] ब्लैकहोल का अस्तित्व सापेक्षता के सिद्धांत के धरातल पर बताया गया है। तत्पश्चात् उसकी खोज में विशेष रूप से ध्यान केंद्रित हुआ। वे कहते हैं—'हम ब्लैकहोल को कभी नहीं देख सकते। क्योंकि उसका प्रकाश कभी हमारे पास नहीं पहुंच सकता। यही वजह है कि वे अत्यंत भारी तारे (Stars) ब्लैकहोल कहलाते हैं।'

डॉक्टर स्टीफेन होकिंग के अनुसार[16] अमेरिकी वैज्ञानिक जान-व्हीलर ने सन् 1969 में ब्लैकहोल की खोज की थी। यद्यपि यह सामान्य अवधारणा विज्ञान जगत में कम से कम दो सौ वर्ष पुरानी है। जोन-मिखेल ने सन् 1783 में ब्लैकहोल विषयक एक शोध-पत्र लिखकर अनेक तथ्य उजागर किए थे। डॉक्टर होकिंग के अनुसार कृष्णविवर की संरचना को समझने के लिए हमें तारों (Stars) के जीवन-चक्र को समझना होगा। एक तारा तब बनता है, जब एक विशाल मात्रा में गैस (प्रायः हाइड्रोजन) गुरुत्व बल के आकर्षण से नष्ट होने लगती है। तारों के निर्माण, उसके 'ह्वाइट्ड्वार्फ' या ब्लैकहोल में परिणत होने संबंधी विस्तृत विवेचन डॉक्टर होकिंग ने 'ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ टाइम' (A Brief History of Time) में किया है। डॉक्टर होकिंग के अनुसार सन् 1975 तक 'Cygnus×1' ब्लैकहोल की बात अस्सी फीसद तय थी। बाद में पिचानबे फीसद तय हुआ कि ब्लैकहोल का अस्तित्व है।[17]

वैज्ञानिक अवधारणा के अनुसार ऐसे कृष्णविवरों की संख्या अनेक हैं। संभवतः हमारी आकाशगंगा में संप्राप्त कृष्णविवर को Cygnus×1 की संज्ञा दी गई है। सन् 2000 में भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा भी ब्लैकहोल (Black Hole) की संपुष्टि के पर्याप्त साक्ष्य दिए गए हैं। समय-समय पर ब्लैकहोल के बारे में नई जानकारियां जारी करने के बावजूद वैज्ञानिक जन अभी तक किसी दृढ़ निश्चय तक नहीं पहुंच पाए हैं। कभी नए ब्लैकहोल (कृष्णविवर) की पुष्टि की जाती है, तो कभी संदिग्धता जाहिर कर उसे नकारा भी जाता है।

'कृष्णविवर' संबंधी खोज के बारे में—'भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा ब्लैकहोल की पुष्टि'—नाम से एक आलेख राजस्थान पत्रिका (20 अप्रैल, 2000) में प्रकाशित हुआ था।[18] उसमें लिखा था—टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, मुंबई के वैज्ञानिकों ने सन् 1996 में प्रक्षेपित—आईएसपी 3 (ISP-3)—उपग्रह से भेजे गए आंकड़ों के आधार पर यह पुष्टि की गई है कि हमारी

आकाशगंगा (गेलेक्सी) में दिखाई देने वाली रहस्यमयी वस्तु वस्तुतः ब्लैकहोल है, जो अब तक 'एक्स-रे' में नहीं आता था।

वैज्ञानिकों ने सबसे पहले सन् 1992 में प्रत्येक 45 मिनट में 'एक्स' किरणों का उत्सर्जन करने वाली एक अजीब वस्तु देखी थी। तब उन्हें लगा यह ब्लैकहोल हो सकता है, लेकिन उस समय उसकी पुष्टि के लिए कोई साक्ष्य नहीं था। जीआरएस 1915105 (GRS 1915105) नामक वह वस्तु हमारी आकाशगंगा में पृथ्वी से 40750 प्रकाशवर्ष दूर है। इस शोध अभियान का नेतृत्व करने वाली टी.आई. आर.एफ. (TIRF) के श्री पी.सी. अग्रवाल ने बताया कि अब इसे ब्लैकहोल सिद्ध करने के पर्याप्त साक्ष्य हमारे पास हैं। इस रिसर्च के दौरान टी.आई.आर.एफ. (TIRF) के वैज्ञानिकों ने 'एक्स' किरणों का एक खास ढांचा (पैटर्न) देखा जो 'एक्स' किरणों के अन्य स्रोतों से बिल्कुल भिन्न है। इसकी व्याख्या तब ही की जा सकती है, जब इसका स्रोत कोई ब्लैकहोल हो। इस निष्कर्ष तक पहुंचने में चार साल लगे। यह निष्कर्ष 'एस्ट्रोफिजिकल-जरनल' में छपा है। इसकी पुष्टि एक अमेरिकी उपग्रह ने भी की है। जी.आर.एफ. 1915105 (GRF 1915105) गुरुत्वाकर्षण के कारण दो तारों से जुड़ी एक 'ट्री प्रणाली' है।

यद्यपि अब तक वैज्ञानिकों ने ऐसी चालीस प्रणालियों से 'एक्स-रे' उत्सर्जन का पता लगाया है, पर उनके उत्सर्जन 'पैटर्न' भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा पाए गए 'पैटर्न' से भिन्न हैं। डा. अग्रवाल का कहना है कि यह 'पैटर्न' ब्लैकहोल की पूरी तरह पुष्टि करता है। हालांकि अनेक आकाशगंगाओं के केंद्र में ब्लैकहोल होने के मजबूत साक्ष्य हैं, पर अब तक केवल सात ब्लैकहोल की पुष्टि हुई है।

तुलनात्मक दृष्टि

जैन दर्शन के अनुसार तमस्काय और कृष्णविवर में समानताएं हैं, तथापि इनमें मौलिक अंतर भी हैं। तमस्काय और कृष्णराजि, दोनों ही क्षुब्ध करने वाली हैं। वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार ब्लैकहोल भी वह सघन कृष्णपिंड है जिसके पास से कोई आकाशीय पिंड या प्रकाश पिंड गुजर नहीं सकता। यदि गुजरता है तो गड्ढ़े में गिर जाता है, उसमें विलीन हो जाता है। ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम (A Brief History of Time) में पृष्ठ 107 और 113 में निर्देशित चित्र और 'तमस्काय' की प्राप्त स्थापना में कई अंशों में समानता है।

जैन दर्शन की यह स्थापना शताब्दियों पुरानी है। विज्ञान आज भी उस दिशा में अन्वेषण रत है। भगवान महावीर द्वारा प्रदत्त यह अवधारणा अंतरदर्शन या विशेष ज्ञान से प्रसूत है। जबकि वैज्ञानिक सूक्ष्म एवं अतिसूक्ष्म उपकरणों के सहारे निरंतर शोध, प्रयोग एवं अनुसंधान कर रहे हैं। भगवान महावीर ने शताब्दियों पूर्व अनेक ऐसे मौलिक सूत्र (Concept) दिए—आकाश की अनंतता, काल (Time—समय) की सूक्ष्मातिसूक्ष्मता, पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि की सजीवता, गति और स्थिति के माध्यम की विद्यमानता आदि। इस दृष्टि से विज्ञान ने जो कार्य किया है, उसे अत्याधुनिक उपकरणों एवं संवेदनशील संसाधनों से सिद्ध भी किया है। कृष्णराजि और तमस्काय का जो विवेचन 'भगवई' आदि जैन ग्रंथों में उपलब्ध है, वह आधुनिक ज्योति-भौतिकविदों (Astro-phisicists) के लिए अनेक नए आयामों को उद्घाटित करने वाला है। इस संदर्भ में गहन अनुसंधान से ब्लैकहोल संबंधी अनेक नए रहस्य उजागर हो सकते हैं। ❖

संदर्भ ग्रंथ

1. भगवई 6/5/70-118
2. भगवई 6/5/87
3. भगवई 6/5/73
4. भगवई 6/5/72
5. भगवई 6/5/75
6. भगवई 6/5/76-81
7. भगवई 6/5/82, 88
8. भगवई 6/5/85
9. भगवई 6/5/102
10. भगवई 6/5/105
11. भगवई 6/5/90, 91
12. भगवई 6/5/92
13. भगवई 6/5/95, 96, 97, 98
14. द्रव्य की अवधारणा, पृ. 124
15. द ताओ ऑफ फिजिक्स, पृ. 196
    (The Tao of Physics, p. 196)
16. ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम, अध्याय-7
    (A Brief History of Time, ch.-7)
17. वही, पृ. 99-100
18. राजस्थान पत्रिका, 24.4.2000

❖❖

❑❑

अहिंसा से ओत-प्रोत चित्त मनुष्य की आयु को प्रलंब, शरीर को अति सुंदर, गोत्र को गुरुतर, धन को अतिप्रचुर, बल को वृद्धिंगत, स्वामित्व को उत्कृष्ट, आरोग्य को अविच्छिन्न और संसाररूपी समुद्र को सुखपूर्वक तैरने योग्य करता है। हिंसा से नकारात्मक सोच के पग मजबूत होते हैं और उससे तनाव की स्थिति पैदा होने लगती है। उसका परिणाम बीमारियों की जकड़ और समय से पहले मृत्यु को आमंत्रण है। हिंसा के कारण रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति कमजोर पड़ जाती है। फिर व्यक्ति 'वायरस' और कीटाणुओं से जल्दी प्रभावित होकर, अपने आरोग्य को खोकर रोग का शिकार हो जाता है। अत्यधिक भौतिक पदार्थों की आकांक्षा से संतुलन बिगड़ जाता है, भावात्मक रूप से अस्थिर हो जाता है और ग्रंथितंत्र बिगड़ जाता है। इसलिए मानव-मन में सम्यक् अहिंसा का बीजारोपण होना चाहिए, उसे क्षुद्रता से ऊपर उठाया जाए—ताकि जीवन स्वर्ग बन सके।

अहिंसा : एक विकासोन्मुख कदम

❀ साध्वी मयंकप्रभा ❀

राजा शिकार करने जंगल में गया। शिकार किया, लेकिन स्वयं मार्ग से भटक गया। रास्ते में एक संन्यासी मिला। राजा ने पूछा—राजगृह जाने का रास्ता कौन-सा है? संन्यासी पहुंचे हुए थे। उन्होंने कहा—मैं दो ही रास्ते जानता हूं। एक नीचे का और दूसरा ऊपर का। जो प्रेम, सद्भावना, सहअस्तित्व, समन्वय और सौहार्दपूर्ण व्यवहार करता है—वह ऊपर जाता है। हमारे भीतर भी दो ही रास्ते हैं—हिंसा और अहिंसा का। एक आविष्ट और दूसरा अनाविष्ट। प्रथम मार्ग है तीव्र कषाय का, दूसरा उपशांत का। इसका मूल स्रोत आत्मा की असत् और सत् प्रवृत्ति है।

हिंसा और अहिंसा इस जगत के बहुचर्चित शब्द हैं। इनकी व्याख्या भी विस्तृत रूप में की गई है। इस व्याख्या के साथ इनके कारणों की चर्चा भी हुई है कि हिंसा कौन करता है? क्यों करता है? कौन नहीं करता और हिंसा क्या है?

हिंसा कौन करता है

आगमशास्त्र के अनुसार—**'इच्चत्थं गढ़िए लोए'**—सुख-सुविधा में मूर्च्छित मनुष्य हिंसा करता है। लुब्ध व्यक्ति हिंसा करता है। प्रत्येक व्यक्ति सुख से जीना चाहता है। इसलिए मनुष्य की दौड़ निरंतर अर्थार्जन और अर्थसंग्रह की दिशा में रहती है। अनिवार्य और प्राथमिक जरूरतों की पूर्ति एवं सामान्य सुख-सुविधापूर्वक जीवन निर्वाह के लिए जितना अर्थ चाहिए उतना अर्जन समाज द्वारा असम्मत नहीं है। लेकिन, सुविधावाद और विलासितापूर्ण जीवन में जरूरतें अधिक बढ़ रही हैं। यहीं से अधिक इच्छा, अधिक स्पर्धा, अधिक उत्पादन का सिलसिला शुरू हो जाता है और फिर हिंसा भी हावी हो

जाती है। तब गलाकाट स्पर्धा, असीमित उत्पादन और अमानवीयता स्वयं में एक उद्देश्य बन जाते हैं। फिर आदमी सिर्फ पैसे के लिए पैसा बटोरने लगता है। तब हृदय की कोमलता और संवेदनशीलता पर आवरण छा जाता है। इस प्रकार वह हिंसा के लिए प्रवृत्त हो जाता है।

आज हिंसा के उत्पादन बढ़ रहे हैं और अहिंसा को जड़ से उखाड़ फेंकने की कोशिश हो रही है। ऐसा लगता है मानव की सहज मानवता कुत्सित स्वार्थवश निरंतर समाप्त होती जा रही है।

हिंसा क्यों

हिंसा में व्यक्ति प्रवृत्त क्यों होता है? इसका विश्लेषण करते हुए आगम में कहा गया—**'अट्टे लोए परिजुण्णे, दुस्संबोहे अविजाणा।'**—इस संसार में जो आर्त, विषय, कषाय आदि मानसिक दोषों से पीड़ित हैं, क्रोधादि की संज्ञा का पैमाना बढ़ गया है, भीतर के कषाय उद्दीप्त हो चुके हैं—वह हिंसा करता है। आवेश के असंतुलन से भी व्यक्ति हिंसा में प्रवृत्त हो जाता है। परिजीर्ण यानी अभावग्रस्त या पदार्थ को पाने की अभिलाषा रखते हुए उससे वंचित रहने वाला है, दुःसंबोध, सैकड़ों प्रयत्न करने पर भी बोध प्राप्त करने में असमर्थ, तत्त्व से अनभिज्ञ—व्यक्ति भी हिंसा करता है।

हिंसा का प्रत्याख्यान किए बिना कोई भी व्यक्ति दुख को नष्ट करने में समर्थ नहीं होता। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी फरमाते रहे हैं—'हिंसा से बचने के लिए आवश्यक है—अहिंसा की चेतना या संवेदनशीलता। दूसरों को कष्ट देते समय यह अनुभूति हो कि यह कष्ट मैं दूसरों को नहीं, स्वयं को दे रहा हूं। जिस समाज में संवेदनशीलता नहीं होती वह समाज अपराधियों, हत्यारों या क्रूरता के खेल खेलने वालों का समाज बन जाता है।'

आज की हिंसा प्राकृतिक ऊर्जा स्रोतों का मनमाना दोहन कर पर्यावरण को नष्ट कर रही है। बार-बार भूकंप, ओजोन की छतरी में छेद—सब प्रकृति के निर्मम दोहन के ही परिणाम हैं। अतिरिक्त इच्छा, हिंसा, आतंक और घृणा के विषफलों ने मानवता की कमनीय काया को विद्रूप बना दिया है, इसे निष्प्राण कर डाला है। मनुष्यता को इस महाविनाश से बचाने के लिए जरूरी है कि अहिंसा, प्रेम व सहअस्तित्व का प्रशिक्षण हो। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं—'बढ़ती हुई क्रूरता, हिंसा और अपराधों का कारण है—अहिंसा, मैत्री, करुणा, सद्भावना और जीवनमूल्यों के प्रशिक्षण का अभाव।' कहा भी गया है—

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैरत्यागः

जिस व्यक्ति के अंतःकरण में अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है, उसकी सन्निधि में शत्रु भी शत्रुता त्याग देता है और वह सबका परममित्र बन जाता है। अहिंसा की शक्तिशाली तरंगें हिंसक, अपराधी और आतंकवादियों की दुर्भावनाओं को भी प्रक्षालित कर सकती हैं। इसलिए हमारी कल्पना सृजनात्मक हो—यह अपेक्षा है।

हिंसा कौन नहीं करता

आगम शास्त्रों में इसके कुछ बिंदु निर्देशित किए गए हैं। ये हैं—**आयंकदंसी ण करेंति पावं**—हिंसा में आतंक देखने वाला हिंसा (पाप) नहीं करता। **समत्तदंसी णं करेंति पावं**—समत्वदर्शी हिंसा (पाप) नहीं करता। **ण लिप्पई छणपएण वीरे**—वीर पुरुष हिंसा कर्म से लिप्त नहीं होता। हिंसा की पृष्ठभूमि में दया, करुणा, मैत्री तथा समत्व की अनुभूति निहित है। जो आत्मिक धरातल पर जीता है, आत्मा की अनुभूति करता है—वही व्यक्ति हिंसा से दूर रहता है। आचार्य सोमप्रभ ने भी कहा है कि जिस व्यक्ति का चित्त करुणा से भीगा हुआ होता है, उस व्यक्ति के जीवन में निम्नोक्त बातों का विकास होता है—

आयुर्दीर्घतरं वपुर्वरतरं गोत्रं गरीयस्तरं,
वित्तं भूरितरं बलं बहुतरं स्वामित्वमुच्चैस्तरं।
आरोग्यं विगतांतरं त्रिजगतिश्लाघ्यत्वमल्पेतरं
संसारांबुनिधिं करोति सुतरं चेतः कृपार्द्रांतरम्।।

अहिंसा से ओत-प्रोत चित्त मनुष्य की आयु को प्रलंब, शरीर को अति सुंदर, गोत्र को गुरुतर, धन को अतिप्रचुर, बल को वृद्धिंगत, स्वामित्व को उत्कृष्ट, आरोग्य को अविच्छिन्न और संसाररूपी समुद्र को सुखपूर्वक तैरने योग्य करता है।

हिंसा से नकारात्मक सोच के पग मजबूत होते हैं और उससे तनाव की स्थिति पैदा होने लगती है। उसका परिणाम बीमारियों की जकड़ और समय से पहले मृत्यु को आमंत्रण है। हिंसा के कारण रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति कमजोर पड़ जाती है। फिर व्यक्ति 'वायरस' और कीटाणुओं से जल्दी प्रभावित होकर, अपने आरोग्य को खोकर रोग का शिकार हो जाता है। अत्यधिक भौतिक पदार्थों की आकांक्षा से संतुलन बिगड़ जाता है,

भावात्मक रूप से अस्थिर हो जाता है और ग्रंथितंत्र बिगड़ जाता है। इसलिए मानव-मन में सम्यक् अहिंसा का बीजारोपण होना चाहिए, उसे क्षुद्रता से ऊपर उठाया जाए—ताकि जीवन स्वर्ग बन सके।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की भाषा में अहिंसक वह होता है— 1. जो सदा प्रसन्न रहता है, 2. जो संवेदनशील और करुणाशील है और 3. जो सकारात्मक सोच रखता है।

हिंसा क्या है

हिंसा में प्रवृत्त व्यक्ति चिरकाल तक बोधि (ज्ञान, दर्शन, चारित्रात्मक रत्नत्रयी) को प्राप्त नहीं होता। यह महान अहित है। हिंसा के परिणामों को नहीं जानने वाला व्यक्ति अहिंसा में प्रवृत्त नहीं हो सकता। इसलिए ग्रंथकार ने 'हिंसा क्या है' बतलाते हुए कहा—

एस खलु गंथे, एस खलु मोहे,
एस खलु मारे, एस खलु णरए।

हिंसा प्राणी के चित्त को ग्रंथित करती है—इसलिए ग्रंथि है। यह मूढ़ता को प्राप्त कराती है—इसलिए मोह है। यह मृत्यु की ओर ले जाती है—इसलिए मारक है तथा यह विपुल वेदना को उपलब्ध कराती है—इसलिए नरक है।

हिंसा को छोड़ने वाले ही कर्मों को क्षीण कर सकते हैं। हिंसा आज की ज्वलंत समस्या है। किसी को दिन-दहाड़े मारना, लूटना, आक्षेप करना—यह व्यक्ति का व्यवसाय बन गया है। भ्रूणहत्या आज की फैशन बन गई है। मनुष्य में प्रकृति से ही कषायजनित मनस्ताप होता है। वह कषायों से उद्दीप्त होता है। भीतर ही भीतर निकाचित गाढ़ कर्मों का बंधन कर नारकी को भी प्राप्त हो जाता है। जैसे—सोमिलब्राह्मण, कालसौकरिक आदि।

धर्म की सापेक्ष कसौटी अहिंसा है। जबकि भगवान महावीर की अहिंसा का प्राणतत्त्व संयम है। उन्होंने अहिंसा को परिभाषित करते हुए कहा—'**अहिंसा निउणं दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो**—संपूर्ण अस्तित्व के प्रति, समस्त जीव जगत के प्रति अपना संयम ही अहिंसा का सम्यक् स्वरूप है।'

यीशु ने भी कहा—यदि तुम मंदिर में जाओ, वहां कहीं तुम्हें बीच में ही याद आ जाए कि मेरा उस व्यक्ति के प्रति बुरा व्यवहार हुआ है—तो पूजा अधूरी छोड़ कर पहले उस व्यक्ति के पास क्षमायाचना के लिए चले जाओ। अहिंसा की यह सबसे बड़ी पूजा है। श्रीमद् राजचंद्र ने कहा—मैं दूध पी सकता हूं, पर किसी का खून नहीं पी सकता। अहिंसक मनुष्य जीवों की हिंसा नहीं कर सकता है, न कराता है और न हिंसा करने वाले का अनुमोदन करता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संयम से बचना हिंसा है और असंयम से बचना अहिंसा है। जरूरत है—हिंसा की दासता से बाहर आने और अहिंसा के स्वच्छ, स्वस्थ और विकासोन्मुख मानवीय जगत में पांव रखने की। ❖

घर-परिवार और मित्र-परिजनों के यहां खुशी के अवसरों पर 'जैन भारती' उपहार के रूप में एक वर्ष, तीन वर्ष या दस वर्ष तक भिजवाकर आप आध्यात्मिक-नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान दे सकते हैं। जन्म-दिन का उपहार हो या कोई अन्य अवसर, 'जैन भारती' अनुपम उपहार के रूप में भेंट के लिए हमें लिखें। आपकी ओर से हम यह कार्य करेंगे।

जैन भारती एक संपूर्ण पत्रिका है।
वैचारिक उन्मेष और परिष्कृत रंजन के लिए
जैन भारती पढ़ें—सबको पढ़ाएं।

व्यवस्थापक
जैन भारती
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401

❑❑

कोरी ने चारों 'गउनियां' सुर में गाकर सुना दीं। कोरिन को बहुत पसंद आईं। प्रसन्न मन से भगवान की आरती की तरह उन्हें गुनगुनाने लगी। अगला पूरा दिन दोनों घर के काम-काज में फंसे रहे। रात में खा-पीकर जब लेटे तो तुरंत नींद ने धर दबोचा। दोनों बेखबर होकर खर्राटे भरने लगे। लेकिन, आधी रात को अचानक कोरिन की नींद उचट गई। फिर तो उसने लाख कोशिश की, मगर नींद थी कि पास भी नहीं फटक रही थी। अंत में परेशान होकर, रात बिताने के लिए, उसने वही 'गउनियां' गुनगुनानी शुरू कर दीं, ताकि शादी से पहले अच्छी तरह से याद हो जाए। संयोग ही कहना चाहिए, ठीक उसी समय चार चोर कोरी के घर में सेंध लगाने आए हुए थे। उन्होंने सोचा था कि लड़के की शादी के लिए कोरी ने जरूर घर में काफी सामान इकट्ठा करके रखा होगा। अगर कहीं वह सामान हाथ लग गया तो कुछ दिन तो उनके बड़े मजे से कट जाएंगे।

गउनियां का चमत्कार

शत्रुघ्नलाल शुक्ल

उन दिनों धानपुर गांव बहुत पिछड़ा हुआ माना जाता था। गरीबी और भोलापन जैसे वहां की विशेष पैदावार हो। शहर से दूर बसे उस गांव के अधिकतर लोग बहुत सीधे, ईमानदार, मगर कुछ-कुछ भोले थे। उन्हें दुनिया में चालाकी क्या होती है, इसका तनिक भी ज्ञान न था। खेतीबाड़ी और मजदूरी करके वे अपना तथा परिवार वालों का पेट पालते और इसी में संतुष्ट रहते थे।

लगभग डेढ़ सौ घरों के उस गांव के आस-पास करीब चार कोस तक कोई आबादी न थी। दूसरे सारे गांव काफी दूर-दूर बसे हुए थे। इसलिए उस गांव का दूसरे गांवों से बहुत ही कम वास्ता पड़ता था। कुछ भी हो, धानपुर के लोग अपने ही में मस्त थे। न राम का लेना, न रहीम का देना। मोटा खाते थे और मोटा पहनते थे। उन्हें क्योंकि कोई अभाव खटकता नहीं था, इसलिए सब के सब खूब मजे में थे।

बालकथा

उसी धानपुर गांव में रहने वाला एक ग्रामीण कोरी कपड़ा बुनकर अपनी रोजी-रोटी चलाया करता था। उसके एक ही लड़का था और नाम था बुद्धू। बुद्धू सचमुच बुद्धू था। बहुत ही भोला और सीधा। दिन-भर वह गांव के ढोर चराया करता, जिसके एवज में उसे हर घर से एक मुट्ठी-भर अनाज मिल जाता। इस तरह, कोरी के ऊपर बोझ न बन कर, उसकी अपनी रोटी का तो जुगाड़ जैसे-तैसे हो ही जाता था।

धीरे-धीरे बुद्धू जब शादी लायक हुआ तो उसकी शादी की चर्चा चली। शीघ्र ही एक जगह उसकी शादी पक्की हो गई। कोरी और कोरिन की प्रसन्नता का ठिकाना न था। दोनों ही उत्साह से भरे थे। बुढ़ापे में बहू देखने की उनकी साध जो पूरी हो रही थी।

मेहनत-मजदूरी और कपड़ा बेचने से जो कुछ भी बचता, वे दोनों उसे इकट्ठा करके जमा करने में शुरू से

लगे थे। कुछ कर्ज भी ले लिया और इस तरह विवाह के खर्चे का पूरा प्रबंध करके उन्होंने बेटे के विवाह की चीजें जुटानी शुरू कर दीं।

बुद्धू की अम्मा ने पड़ोसियों और बिरादरी वालों से पूछ-पूछ कर सारी चीजें बुद्धू के अब्बा को समझा दीं। इतना यह सामान गांववालों की दावत के लिए चाहिए, इतनी सब चीजें बहू के लिए होनी चाहिए, आदि-आदि।

आटा, दाल, चावल और नमक-तेल आदि की व्यवस्था तो गांव में ही हो गई, लेकिन जेवर और कपड़ों के लिए 'बाजार' जाए बिना गति न थी।

धानपुर गांव से लगभग छः कोस दूर दीनगंज गांव पड़ता था, जहां हर इतवार को 'बाजार' लगा करता था। आस-पड़ोस के गांवों के व्यापारी और दूसरे खरीददार वहीं पहुंच कर सप्ताह-भर का सौदा खरीदते और बेचते थे।

जब बुद्धू की शादी के चार दिन शेष रह गए तो कोरिन ने कोरी से कहा—'अरे बुद्धू के अब्बा! सिर्फ चार ही दिन तो शेष रह गए हैं, कल सबेरे ही तुम दीनगंज 'बाजार' से शादी का बाकी सारा सामान भी खरीद लाओ। बीच में 'बाजार' का दूसरा कोई दिन नहीं पड़ेगा।'

कोरी के दिमाग में बात बैठ गई। बोला—'ठीक है। मैं सुबह-सुबह ही चल दूंगा। मेरे झोले में लोटा, डोरी, अंगोछा और थोड़ा-सा सत्तू रख देना। पैसे मैं अपनी अंटी में लिए रहूंगा।'

कोरिन ने उसी समय उठ कर सारी चीजें उसके झोले में डाल दीं।

रात को जब दोनों लेटे तो कोरिन ने बाजार से लाने वाली सारी चीजें फिर से गिना दीं—'बहू के लिए लहंगा गुलबदन का लेना और चुनरी भी उसी के जोड़ की होनी चाहिए। अंगिया में 'तूल' जरूर लगा रहे। जेवर पक्की चांदी के खरीदना, मगर दूकानदार से पुरजा जरूर लिखवा लेना। जिससे बाद में कोई झंझट न पड़े। कुछ सुपारी-लोंग-इलायची भी लेते आना। कंघी-चोटी और सीसा-सिंधौरा कहीं भूल न जाना। बुद्धू के कपड़े और जूते उसका माप देखकर खरीदना। कोई रोज-रोज उसका ब्याह थोड़े ही होगा!'

कोरी हां-हूं करता रहा। फिर एक जम्हाई लेते हुए बोला—'ठीक है। ये सारी चीजें मेरे ध्यान में हैं, मैं जरूर लेता आऊंगा।'

थोड़ी देर चुप रह कर कोरिन एकबारगी बोल उठी—'अरे हां, एक चीज कहना तो मैं भूल ही गई—कहीं से चार 'गउनियां' (शादी-ब्याह में गाए जाने वाले गीत) भी ले लेना। आखिर घर में शुभ कारज हो रहा है तो ढोलक-गाना भी जरूर होना चाहिए। मुझे तो एक भी 'गउनई' नहीं आती, गाऊंगी कैसे! यहां कोई बताने वाला भी तो नहीं है। वहीं बाजार में कहीं से पूछ-पाछ लेना। मगर 'गउनियां' बढ़िया होनी चाहिए।'

—'अच्छा, भई अच्छा! और भी जो कुछ लाना है, अभी से बता दे! बाद में न कहना कि···।'—कोरी ने दुबारा जम्हाई ली और करवट बदल कर सोने का प्रयास करने लगा। असल में दिन-भर की दौड़-धूप से वह काफी थक गया था और इस समय वह सो जाना चाहता था। उसे नींद लग चुकी थी।

देर तक सोचते रहने पर भी कोरिन को और कोई चीज ध्यान में न आई। मन ही मन बोली—बस, इतने सब से ही काम चल जाएगा।

कोरी खर्राटे भरने लगा था।

अगले दिन मुंह-अंधेरे ही कोरी अकेला 'बाजार' की ओर चल पड़ा। जब वहां पहुंचा तो 'बाजार' लग चुका था। घूम-घूम कर उसने एक-एक चीज खरीदी।

सांझ पड़ने पर घर लौटने के लिए जब उसने अपना झोला सहेजा तो एकाएक उसे याद आया—अरे, मैं तो भूल ही गया था! कोरिन ने तो 'गउनियां' लाने को भी कहा था। दुबारा एक-एक दूकानदार के पास जा-जाकर पूछने लगा—'साहजी! मुझे 'गउनियां' खरीदनी है, किधर बिकती हैं?'

प्रश्न ऐसा था कि जिसका उत्तर किसी के पास न था। उलटा लोग तो कोरी को मूर्ख समझ उसकी मूर्खता पर हंस रहे थे। दो-एक दूकानदारों नें तो झिड़कने तक के स्वर में कह डाला कि—'कहां का अहमक है बे, तू! 'गउनई' भला बाजार में बिकने वाली चीज है!'

लेकिन, कोरी पर तो एक ही धुन सवार थी कि लौटने पर कोरिन 'गउनियां' मांगेगी तो वह क्या जवाब देगा! यह विचार ही उसे बार-बार परेशान किए जा रहा था। लिहाजा वह जगह-जगह घूम कर पूछता रहा—'बेटे के ब्याह में गाने के लिए बुद्धू की अम्मा को 'गउनियां' चाहिए। उनके मिलने का पता-ठिकाना किसी को मालूम हो तो भई बता दे।'

तभी उसकी भेंट एक चलते-पुरजे आदमी से हो गई। कोरी का प्रश्न सुनते ही वह तुरंत भांप गया कि वह गंवार तो अव्वल दरजे का बेवकूफ लगता है। क्यों न इसे झांसा देकर इससे कुछ रकम ऐंठी जाए! कोरी को एक ओर ले जाते हुए बोला—'मैं ही हूं जो 'गउनियां' बेचा करता हूं। बोलो, कितनी चाहिए तुम्हें?'

कोरी की जान में जान आई। तन कर खड़े होकर पूछने लगा—'क्या भाव बेचते हो?'

—'एक रुपये की एक।'—कह कर वह आदमी कोरी के चेहरे पर के भाव पढ़ने लगा।

कोरी ने मन ही मन अपने पैसों का हिसाब लगाया और फिर बोला—'अच्छा! तो मुझे तुम चार 'गउनियां' दे दो।'

—'निकालो चार रुपये!'—वह आदमी कोरी की मूर्खता पर प्रसन्न होता हुआ बोला।

कोरी ने चार रुपये गिन कर उसकी हथेली पर धर दिए।

रुपयों को अपनी जेब के हवाले करते हुए वह बोला—'ठीक है। लो गिनो···'

—'खुटुर-खुटुर तुम खोदि रहे।—'गउनी' नंबर एक।'

—'टुकुर-टुकुर तुम झांकि रहे।—'गउनी' नंबर दो।'

—'निहुरे-निहुरे जात है।—'गउनी' नंबर तीन।'

—'वह जा, वह जा, वह जा।—यह रही 'गउनी' नंबर चार।'

—'बस, इन्हीं चारों को रटते रहो। शादी में आए मेहमान इनको सुन कर खुश हो जाएंगे।'

कोरी की प्रसन्नता का ठिकाना न था। उसे लगा कि 'बाजार' आना अब सार्थक हो गया है। लंबे डग भरता हुआ वह गांव की ओर लौट पड़ा।

घर पहुंचते-पहुंचते रात हो गई। सारा सामान सहेजने के बाद कोरिन ने पूछा—'बुद्धू के अब्बा! 'गउनियां' लाना कहीं भूल तो नहीं गए?'

—'लाया हूं भई, वह भी लाया हूं। लेकिन उनके लिए सारे बाजार की धूल फांकनी पड़ी। बड़ी मुश्किल से जाकर कहीं मिलीं।'

—'जरा मैं भी तो उन्हें सुनूं! शादी को अभी तीन दिन बाकी हैं, तब तक मैं उन्हें याद कर लूंगी।'

कोरी ने चारों 'गउनियां' सुर में गाकर सुना दीं। कोरिन को बहुत पसंद आईं। प्रसन्न मन से भगवान की आरती की तरह उन्हें गुनगुनाने लगी।

अगला पूरा दिन दोनों घर के काम-काज में फंसे रहे। रात में खा-पीकर जब लेटे तो तुरंत नींद ने धर दबोचा। दोनों बेखबर होकर खर्राटे भरने लगे।

लेकिन, आधी रात को अचानक कोरिन की नींद उचट गई। फिर तो उसने लाख कोशिश की, मगर नींद थी कि पास भी नहीं फटक रही थी। अंत में परेशान होकर, रात बिताने के लिए, उसने वही 'गउनियां' गुनगुनानी शुरू कर दीं, ताकि शादी से पहले अच्छी तरह से याद हो जाए।

संयोग ही कहना चाहिए, ठीक उसी समय चार चोर कोरी के घर में सेंध लगाने आए हुए थे। उन्होंने सोचा था कि लड़के की शादी के लिए कोरी ने जरूर घर में काफी सामान इकट्ठा करके रखा होगा। अगर कहीं वह सामान हाथ लग गया तो कुछ दिन तो उनके बड़े मजे से कट जाएंगे।

जब उन्होंने सेंध लगाना शुरू किया तो एक चोर को कुछ गुनगुनाने की आवाज सुनाई पड़ी।

उसने सतर्क होकर अपने साथियों को फुसफुसाते हुए कहा—'जान पड़ता है, घर वाले जाग रहे हैं। ध्यान से सुनो, कोई कुछ कह रहा है!'

चोर चौकन्ने होकर सुनने लगे। भीतर चारपाई पर लेटी कोरिन, अपने ही में मस्त, पहली 'गउनई' को बार-

बार गुनगुना रही थी—'खुटुर-खुटुर तुम खोदि रहे··· खुटुर-खुटुर तुम खोदि रहे···।'

दूसरा चोर तुरंत बोल उठा—'हां यार! तुम ठीक कह रहे हो। कोई जाग रही है और उसे सेंध लगने का पता भी चल गया है। इसीलिए वह खोदने की बात को बार-बार दुहरा रही है। कहीं ऐसा न हो कि वह डंडा लेकर हम पर पिल ही पड़े!'

चोरों ने रात के अंधेरे में आंखें फाड़-फाड़ कर इधर-उधर नजरें घुमानी शुरू कीं कि कहीं सचमुच ही कोरिन डंडा लेकर न निकल पड़ी हो! तब तक कोरिन ने दूसरी 'गउनई' बोलनी शुरू कर दी—'टुकुर-टुकुर तुम झांकि रहे···टुकुर-टुकुर तुम झांकि रहे···।'

तीसरा चोर अत्यंत धीमे स्वर में अपने साथियों से बोला—'भैया! कोरिन तो हम लोगों की सारी हरकतें देख रही जान पड़ती है। यहां कुछ हाथ नहीं लगेगा। बस, जान बचाओ और तुरंत चुपचाप निकल चलो।'

चौथे चोर ने भी यही सलाह दी—'जब यहां कुछ मिलना ही नहीं है तो बेकार अपनी जान आफत में क्यों डालें!'—और इतना कहने के साथ ही वह सतर्क कदमों से धीरे-धीरे बाहर की ओर चल पड़े। अपने को वे इस तरह समेटे हुए थे कि किसी की उन पर निगाह पड़े भी तो यही लगे कि कोई जानवर जा रहा है।

तब तक कोरिन ने तीसरी गउनई बोलनी शुरू कर दी—'निहुरे-निहुरे जात है···निहुरे-निहुरे जात है···।'

अब तो सबको यह विश्वास हो गया कि किसी भी पल कोरिन डंडा लेकर उन पर पिल ही पड़ेगी। अगर उन्होंने जरा भी भागने में देरी की तो जरूर पकड़े जाएंगे। फिर क्या था, वे तीनों ही निकल भागने के प्रयास में दोहरे झुक कर बाहर की ओर चल पड़े।

कोरिन इस सबसे बेखबर थी और अपने ही में मगन होकर, निश्चिंत मन से बेटे के ब्याह में गाई जाने वाली चारों 'गउनियां' एक-एक करके याद किए जा रही थी। पहली तीन 'गउनियां' याद हो चुकने पर, अब उसने चौथी 'गउनी' के भी बोल रटने शुरू कर दिए—'वह जा, वह जा, वह जा···।'

अब तो चोरों को एकदम पक्का लगा कि जैसे गांववालों ने सचमुच ही उन्हें घेर लिया है। आपस का साथ भूल कर, जिसे जिधर को राह मिली, उधर ही को वे भाग चले। पीछे घूम कर यह देखने का प्रयास भी नहीं किया कि वाकई गांव-वाले पीछा भी कर रहे हैं या यूं ही दहशत के कारण वे भागे जा रहे हैं।

गांववाले तो बेखबर अपने घरों में सोए पड़े थे। भला उनको इस सबका क्या पता चलता! मगर हां, दरवाजे पर सो रहे कुत्ते ने भौंक कर जरूर कोरी की नींद में खलल डाल दी। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा और कोरिन को साथ लेकर बाहर चला आया। कुत्ता अब भी लगातार भूंके जा रहा था। तब तक पड़ोसी लोग भी जाग गए थे और आकर कोरी के मकान के बाहर इकट्ठे हो गए थे। कुत्ते के लगातार भूंकते जाने से उन्हें शक हुआ कि जरूर कहीं कुछ गड़बड़ है। लालटेनें जला कर वे इधर-उधर नजरें घुमाने लगे। एकाएक किसी की निगाह कोरी के पिछवाड़े सेंध पर जा टिकी। पास पहुंच कर उसने बाकी सब लोगों को भी बुला लिया।

लेकिन, पूरे घर की छानबीन करने के बाद जब उन्हें यह पता चला कि कोरी लुट जाने से बाल-बाल बच गया है, तो सबको अत्यंत संतोष हुआ। कोरी और कोरिन की प्रसन्नता का तो ठिकाना ही न था, वर्ना बेटे के ब्याह की उनकी साध धरी की धरी रह जाती।

बुद्धू की शादी के लिए इकट्ठा किया गया सारा सामान ज्यों का त्यों मौजूद था। बाद में कोरिन ने बताया—'आधी रात को नींद टूटने पर जब बुद्धू के अब्बा द्वारा बाजार से खरीदी गई चारों 'गउनियां' वह याद कर रही थी, उसी वक्त शायद चोरों ने सेंध लगाई होगी! मुझे तो उन लोगों के आने का तनिक भी आभास नहीं हुआ, मगर मेरी 'गउनियों' की आवाज जरूर उन तक पहुंची होगी! जान पड़ता है मेरी 'गउनियां' सुन कर ही चोर भागे हैं।'

लोगों को अचरज हुआ—ऐसी कौन-सी 'गउनियां' हैं, जिन्हें कोरी बाजार से खरीद कर लाया है, तिस पर चमत्कार यह कि घर में चोरी करने के इरादे से

आए चोर भी उन 'गउनियों' को सुन कर भाग गए हैं। एक ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'जरा हमें भी तो वे 'गउनियां' सुनाओ! आखिर ऐसी कौन-सी खूबी थी उनमें, जिससे चोर भी भागने के लिए विवश हो गए।'

कोरिन बड़े प्रसन्न मन से एक-एक करके चारों गउनियां गाने लगी—

'खुटुर-खुटुर तुम खोदि रहे।'

'टुकुर-टुकुर तुम झांकि रहे।'

'निहुरे-निहुरे जात है।'

'वह जा-वह जा-वह जा।'

सुनते ही हंसी के फव्वारे छूट पड़े। लोग हंस-हंस कर दुहरे हुए जा रहे थे।

कुछ देर बाद जब लोगों की हंसी थमी तो एक बोला—'इन 'गउनियों' पर खर्च हुए तेरे रुपयों ने पूरी कीमत चुका दी, कोरी! अगर ये 'गउनियां' न होतीं तो आज तुम्हारे घर में कुछ भी न बचा होता। इन्हीं को सुन कर चोरों की सारी चालाकी हवा हो गई और उन्हें दुम दबा कर भागना पड़ गया। अब तुम मजे में अपने लड़के का ब्याह रचाओ।'

कोरिन आकाश की ओर हाथ जोड़ कर भगवान का एहसान मानती हुई बोली—'तुम्हारी माया कौन जान सकता है, प्रभु!'

दो दिन बाद बुद्धू का विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ। कोरिन ने विवाह की शुभ घड़ी में वही चारों 'गउनियां' बड़ी तन्मयता से और बार-बार गाईं। जिसने भी 'गउनियों' की करामात के बारे में सुना, हंस-हंस कर लोट-पोट हुए बिना न रहा।

ब्याह की रस्म पूरी हो जाने के बाद कोरी और कोरिन की ओर से पूरे गांव को न्योता दिया गया। बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी भोज पर आमंत्रित किए गए। सबकी खूब आवभगत हुई।

मेहमानों ने भी बुद्धू और उसकी नई-नवेली दुल्हन को 'असीसें' देते हुए कोरी-कोरिन के भाग्य की सराहना की। ❖

जनरुचि : उचित हो; हितकर हो

पृष्ठ 28 का शेष

और उसके द्वारा समाज व आम-जन को आकृष्ट किया जाता है। आज स्वास्थ्य, लोक-चेतना आदि नाना विषयों का प्रशिक्षण सिनेमा के माध्यम से दिया जाता है। कुप्रथाओं व रूढ़ियों के प्रति परिष्कृत जन-रुचि का प्रयत्न भी किया जाता है। फिर क्या कारण हो सकता है कि प्रेम, विलास, आसक्ति और अश्लीलता के विषय में सिनेमा कुत्सित जन-रुचि का ही पोषण करे?

व्यवसाय फलता-फूलता रहे—यह दृष्टिकोण वांछित नहीं है। लोकतांत्रिक देशों में तभी सुधार संभव होता है, जब समाजगत अपेक्षाओं के सामने व्यक्तिगत स्वार्थ गौण मान लिए जाते हैं। अणुव्रत-आंदोलन संग्रह व शोषण की वृत्तियां मिटा कर आवश्यकताओं के अल्पीकरण पर बल देता है। वह व्यक्ति में संकीर्ण वृत्तियों का संकोच कर—**'मित्ती मे सव्वभूएसु'**—व —**'वसुधैव कुटुंबकम्'**—का आदर्श लाना चाहता है।

सभ्य व शिक्षित लोगों का बहुमत अश्लील प्रदर्शनों के पक्ष में हो—ऐसा नहीं लगता। लोगों के अज्ञान को जन-रुचि कह कर व्यवसायी समाज उससे अनुचित लाभ उठाते हैं। यह जन-रुचि के बारे में एक प्रकार का शोषण है। अशिक्षित व असभ्य लोग तो बच्चे के समान होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि हर कार्य में उनकी रुचि को ही प्रधानता दी जाए। वहां उनकी रुचि के बजाए उनके हिताहित का प्रश्न प्रमुख है। अभिभावकों का कर्तव्य होता है कि बच्चा यदि अपनी सहज रुचि के कारण किसी अनुचित कार्य की ओर प्रवृत्त होता है तो वे उसे उचित प्रवृत्ति करने का मार्ग-दर्शन करें। समाज में जो लोग शिक्षित, सभ्य व अगुआ हैं—उनका कर्तव्य है कि जो जन-रुचि उचित और हितकर नहीं है—उसे बदलें, न कि अपने लाभ के लिए उसका पोषण ही करते रहें। फिल्म-निर्माता भी यह बात समझ चुके हैं, अतः निम्नस्तरीय प्रदर्शन को कम किया जा सकता है। अणुव्रत-आंदोलन मनुष्य का दृष्टिकोण व मानदंड बदलना चाहता है। उसका प्रयत्न है कि मनुष्य असंयम से मुड़ कर संयम की ओर बढ़े। उसका घोष है—**संयमः खलु जीवनम्**—संयम ही जीवन है। ❖

पृष्ठ 17 का शेष

इन्होंने सिंधु-उपत्यका के नागरिकों को परास्त कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उनका मानना है कि आर्यों के भारत में आने से पूर्व सिंधु-उपत्यका में असीरिया की एक समसामयिक सभ्य जाति रहती थी। यह सामंतशाही पद्धति पर शासित नागरिक जाति थी। उसकी सभ्यता असुर और काल्दी के समान थी तथा उनकी समसामयिक भी थी। यह 'शिश्नदेव' की पूजा करती थी। कृषि, शिल्प और वाणिज्य में यथेष्ट विकसित थी। इसका अपना विशिष्ट धर्म था तथा एक चित्रलिपि भी थी।

दूसरी ओर आर्यों के बाहर से आने की अवधारणा के विरुद्ध बहुत से भारतीय संस्कृत भाषा के विद्वानों ने वेदों का तथा पुराणों आदि का अध्ययन करने के पश्चात् यह स्थापना की कि आर्य भारत में बाहर से नहीं आए, यहीं के निवासी थे। श्री रामदत्त सांकृत्य की पुस्तक 'आदि मानव का आदि देश' (साहित्य संस्थान, चूरू) को इस विवादास्पद विषय पर लिखी महत्त्वपूर्ण पुस्तक माना जाना चाहिए। इनके अनुसार सरस्वती और दृषद्वती की प्राचीन घाटी में आर्य संस्कृति ने सर्वप्रथम नवोन्मेष किया था।

रामदत्त सांकृत्य अपनी भावनाप्रधान भाषा में यहां तक मानते हैं कि पाश्चात्य विद्वानों ने नीग्रो जाति, आग्नेय जाति तथा द्रविड़ जाति को हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, नाल और खंभात की खाड़ी जैसी पुरातन संस्कृति, सिंधु सभ्यता का निर्माणकर्ता माना। लेकिन, यह गलत है।

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो आदि में प्रचुरता से प्राप्त होने वाली वृषभांकित सीलें, मयूर तथा शमी, पीपल का अंकन इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि वहां की सभ्यता वृषभ-गौ की धुरी पर पल्लवित होने वाली सभ्यता थी।..... वैदिक साहित्य में वृषभ को ही महत्त्व प्राप्त नहीं है, अपितु आर्यों का नेता इंद्र भी वृषभ है, उसका सखा भी वृषाकपि है। आर्यों के धर्म को भी स्थान-स्थान पर वृषभ कहा गया है। अगर विश्व में गौ की धुरी पर पल्लवित होने वाली कोई सभ्यता है, तो वह आर्य सभ्यता है।

रामदत्त सांकृत्य की पुस्तक को महत्त्वपूर्ण इसलिए माना जाना चाहिए कि इन्होंने तर्कसम्मत प्रमाणों के आधार पर आर्य-जाति के काल को बहुत पीछे तक खिसकाया है। वेदों की रचना भी इस दृष्टि से अपना औचित्यपूर्ण काल पाती है। वह 'साध्य युग' का हवाला देकर कश्यप प्रजापति की संतानों में भूमि-विभाजन बताते हैं।

इस विभाजन में सिंधु से पूर्व काश्मीर-सिवालिक, सप्तस्वसा सरस्वती प्रदेश आदित्यों को और सिंधु से पश्चिम कास्पियन सागर तक का प्रदेश दैत्यों तथा दानवों को मिला था।

आर्यों के नायक इंद्र का सरस्वती प्रदेशों पर आधिपत्य था। सरस्वती प्रदेशों के निवासियों (सारस्वत प्रदेश) ने सिंधु पार के निवासियों को यदि अपना शत्रु मान कर उन्हें अनार्य, निषाद, दस्यु आदि कह दिया तो इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वे विजातीय द्रविड़ अथवा आग्नेयी लोग थे।

सभ्यता का संबंध जितना व्यक्ति से है उतना ही समाज से है और यह कालसापेक्ष है। किसी अमुक काल में सामान्य सामाजिक स्थिति कैसी है? संस्थागत व्यवस्थाएं कैसी हैं? व्यक्तियों का सामूहिक जीवन किस तरह से चलता है? उनके आजीविका के साधन क्या हैं? उनकी रुचियां मुख्य रूप से किस तरफ रुझान रखती हैं? कलाओं की अभिव्यक्ति में विशिष्टता क्या है? उनकी व्यावहारिक मान्यताएं तथा धार्मिक आस्थाएं क्या हैं? यह सब सभ्यता के अंतर्गत सम्मिलित रहता है। इसमें यह भी जाना जा सकता है कि अपने से पूर्व की सभ्यता से क्या-कुछ लिया और स्वयं अपनी बौद्धिक तथा रचनात्मक क्षमता से किस दिशा में और कितने स्तरों पर नव्यता जोड़ी?

हमें यह मानना चाहिए कि जिस प्रकार भौतिक प्रकृति और सृष्टि अपनी परिवर्तनशीलता को बनाए हुए कालगत अजस्र प्रवाह की निरंतरता (सनातनता) में गतिशील है, उसी तरह मानवीय एवं विशिष्ट क्षेत्रों की मनुष्यों की संस्कृति व सभ्यता भी परिवर्तनशीलता की क्रमिकता बनाए रख कर प्रवाहमयी रहती है। जातियां, सत्ताएं तथा व्यवस्थाएं अवसानित होते हुए भी अपनी संतानों के माध्यम से सनातन रहती हैं। आदि में अंत निहित रहता है और अंत में आदि। ❖

क्रमश : शेष अगले अंक में

संबोधन अलंकरण समारोह

श्रद्धेय आचार्यप्रवर जिन श्रावक-श्राविकाओं को उनकी जीवनगत श्रेष्ठताओं के आधार पर विशेष संबोधनों से संबोधित करते हैं, उनको जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा प्रतिवर्ष मर्यादा महोत्सव के अवसर पर पूज्यप्रवरों की पावन सन्निधि में आयोजित विशेष कार्यक्रम में अलंकरण प्रदान कर सम्मानित करती है। गत कई वर्षों से उक्त अवसर पर महासभा द्वारा अलंकरण प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं की **सचित्र परिचय पुस्तिका** भी प्रकाशित की जाती है।

संबोधन अलंकरण समारोह आगामी राजलदेसर मर्यादा महोत्सव के अवसर पर माघ शुक्ला चतुर्थी, दिनांक 07 फरवरी, 2011 को प्रातः 9.30 बजे पूज्यवरों के पावन सान्निध्य में आयोजित है। इस अवसर पर एक मिलन गोष्ठी का आयोजन दिनांक 06 फरवरी को सायंकाल किया जा रहा है। संबोधन प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं अथवा उनके परिवारजनों से सादर निवेदन है कि अब तक जिन्होंने परिचय एवं फोटो महासभा कार्यालय में प्रेषित नहीं किया है, वे संबोधन प्राप्तकर्ता का परिचय दो फोटो सहित यथाशीघ्र महासभा प्रधान कार्यालय, कोलकाता के पते पर प्रेषित करने की व्यवस्था करें।

सभी संबोधन प्राप्तकर्ता महानुभाव एवं परिवारजन उपरोक्त समायोजन में सहभागिता हेतु सादर आमंत्रित हैं।

चैनरूप चिंडालिया
अध्यक्ष

भंवरलाल सिंघी
महामंत्री

क्र.सं.	नाम	निवासी	अलंकरण
1.	श्री तेजराजजी पूनमिया	खिंवाड़ा	शासनसेवी
2.	श्री लालचंदजी सिंघी	श्रीडूंगरगढ़	शासनसेवी
3.	श्री माणकचंदजी सिंघी	श्रीडूंगरगढ़	शासनसेवी
4.	स्व. गोपीचंदजी चोपड़ा	गंगाशहर	शासनसेवी
5.	स्व. हनुमानमलजी बैंगानी	लाडनूं	शासनसेवी
6.	स्व. सूरजमलजी सिंघी	श्रीडूंगरगढ़	शासनसेवी
7.	स्व. कन्हैयालालजी दूधोड़िया	छापर	शासनसेवी
8.	श्री जयचंदलालजी नाहटा	छापर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
9.	श्री माणकचंदजी नाहर	परतूर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
10.	श्री दर्शनकुमारजी जैन	हांसी	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
11.	श्री इंद्रचंदजी डागा	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
12.	श्री चौथमलजी श्यामसुखा	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक

क्र.सं.	नाम	निवासी	अलंकरण
13.	श्री भंवरलालजी नाहर	पांढ़रना	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
14.	श्री मांगीलालजी खाब्या	लांगघ	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
15.	श्री खींवकरणजी डोसी	बीदासर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
16.	श्री केवलचंदजी दरला	चेन्नई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
17.	श्री मोजीरामजी जैन	उड़ीसा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
18.	श्री मोहनलालजी लोढ़ा	पाली	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
19.	श्री फाऊलालजी बांठिया	पाली	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
20.	श्री सोहनलालजी चोपड़ा	पाली	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
21.	श्री प्रकाशजी सिंघवी	मुम्बई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
22.	श्री सुभाषजी बड़ाला	पड़ासली	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
23.	श्री श्रीचंदजी बोथरा	सरदारशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
24.	श्री विनोदकुमार जैन	हांसी	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
25.	मोदी भोगीलाल हीराचंद	भाभर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
26.	श्री अमरचंदजी संचेती	मोमासर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
27.	श्री पानमलजी कुहाड़	मोमासर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
28.	श्री इंद्रचंदजी सेठिया	कुंभकोणम	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
29.	स्व. प्रेमनारायणजी जैन	हांसी	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
30.	स्व. चंदनमलजी बरमेचा	तारानगर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
31.	श्री पन्नालालजी पटावरी	मोमासर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
32.	स्व. मूलचंदजी ओस्तवाल	बालोतरा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
33.	स्व. भंवरलालजी संचेती	मोमासर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
34.	श्री मदनचंदजी सुराणा	तारानगर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
35.	श्री भंवरलालजी धोका	पाली	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
36.	श्री जतनलालजी बोथरा	सरदारशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
37.	श्री मोहनलालजी मादरेचा	केलवा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
38.	श्री बिरधीचंदजी मादरेचा	केलवा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
39.	श्री गोविंदरामजी सुराना	चाड़वास	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
40.	श्री केसरीचंदजी बांठिया	पीलीबंगा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
41.	श्री मुक्तिभाई संघवी	वाव	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
42.	श्री बाबूभाई संघवी	वाव	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
43.	श्री जुगराजजी डागा	चेन्नई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
44.	श्री चंदनमलजी बैद	लाडनूं	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
45.	श्री सोभागमलजी जैन	उधना	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
46.	श्री गोपालचंदजी जैन	पीलीबंगा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
47.	श्री ताराचंदजी खांटेड़	पचपदरा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक

क्र.सं.	नाम	निवासी	अलंकरण
48.	श्री ओमप्रकाशजी जैन	तपामंडी	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
49.	श्री घेवरचंदजी संकलेचा	टापरा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
50.	श्री जीवनभाई जैन	कच्छ	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
51.	श्री अंबालालजी तलेसरा	सेमड़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
52.	श्री देवीलालजी बोराणा	सेमड़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
53.	श्री कन्हैयालालजी कोठारी	राजनांदगांव	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
54.	श्री विमलकुमारजी सोनी	सोजतरोड	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
55.	श्री सोहनलालजी कांकरिया	सोजतरोड	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
56.	श्री डालमचंदजी सुराणा	चूरू	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
57.	श्री धनराजजी पुगलिया	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
58.	श्री धर्मचंदजी पुगलिया	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
59.	श्री बाबूलालजी बोहरा	झकनावद	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
60.	श्री केवलचंदजी जैन	जसोल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
61.	श्री रिछपालजी जैन	उड़ीसा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
62.	श्री जंवरीमलजी नाहटा	सिरसा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
63.	श्री उगमचंदजी धारीवाल	छोटी खाटू	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
64.	श्री रुकमानंदजी मालू	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
65.	श्री पूनमचंदजी मालू	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
66.	श्री रिधकरणजी लूणिया	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
67.	श्री रावंतमलजी तातेड़	जसोल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
68.	श्री झंवरलालजी मालू	गंगाशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
69.	श्री घीसारामजी जैन	मंडी आदमपुर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
70.	श्री सत्यनारायणजी जैन	टिटिलागढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
71.	श्री केवलचंदजी लूणावत	हैदराबाद	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
72.	स्व. माणकचंदजी पटावरी	मोमासर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
73.	स्व. राजमलजी सिरोहिया	बावलास	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
74.	स्व. चतुर्भुजजी मालू	गंगाशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
75.	स्व. भंवरलालजी गधैया	राजगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
76.	स्व. रतनलालजी चंडालिया	सरदारशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
77.	स्व. हनुमानमलजी बाफना	सुजानगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
78.	स्व. विजयसिंहजी सुराणा	राजगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
79.	स्व. कुंदनमलजी सुराणा	तारानगर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
80.	स्व. रिधकरणजी डागा	सरदारशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
81.	स्व. मदनलालजी संकलेचा	टापरा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
82.	स्व. भीखाभाईजी पारिख	माडका	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
83.	स्व. गेहरीलालजी कच्छारा	आमेट	श्रद्धानिष्ठ श्रावक

क्र.सं.	नाम	निवासी	अलंकरण
84.	स्व. पदमचंदजी जैन	हिसार	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
85.	स्व. घीसूलालजी सुंदरलालजी खांटेड़	खिंवाड़ा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
86.	स्व. विनोदजी बैद	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
87.	स्व. हरिशचंदजी जैन	हिसार	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
88.	स्व. मालचंदजी पुगलिया	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
89.	स्व. मांगीलालजी कुंडलिया	राजलदेसर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
90.	स्व. डूंगरमलजी सेठिया	सादुलपुर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
91.	स्व. बच्छराजजी बैद	रतनगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
92.	स्व. नेमचंदजी मालू	देशनोक	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
93.	स्व. मोहनभाई पारिख	मावसरी	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
94.	स्व. सज्जनराजजी लूणावत	चेन्नई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
95.	स्व. पूनमचंदजी गोलछा	अबोहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
96.	स्व. नेतमलजी सामसुखा	तारानगर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
97.	स्व. बापूलालजी भंडारी	पेटलावद	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
98.	स्व. तेजमलजी सिसोदिया	रायपुर-बोराणा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
99.	स्व. दुलीचंदजी सेठिया	मोमासर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
100.	स्व. बच्छराजजी पटावरी	मोमासर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
101.	स्व. विजयचंदजी बोथरा	बीकानेर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
102.	स्व. घेवरचंदजी ढेलड़िया	जोधपुर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
103.	स्व. गुलाबचंदजी बोथरा	गंगाशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
104.	स्व. नेमीचंदजी गोलछा	बाड़मेर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
105.	स्व. प्रेमराजजी डागा	तारानगर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
106.	श्री तेजूरामजी जैन	बगुमुंडा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
107.	श्री भगवतीलालजी कोठारी	उदयपुर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
108.	श्रीमती लीलादेवी पुनमिया	खिंवाड़ा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
109.	श्रीमती इचरजदेवी सेठिया	मोमासर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
110.	श्रीमती माणकबाई सेठिया	बगड़ी	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
111.	श्रीमती कैलाशवती जैन	हिसार	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
112.	श्रीमती राजकुमारी नाहर	पांढ़रना	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
113.	श्रीमती इंद्रमणि बरमेचा	तारानगर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
114.	श्रीमती भीखीदेवी सेठिया	मोमासर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
115.	श्रीमती मक्खूदेवी सेठिया	मोमासर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
116.	श्रीमती गुलाबबाई कोठारी	जालसू	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
117.	श्रीमती रतनीदेवी नाहटा	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
118.	श्रीमती किरणदेवी बरड़िया	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
119.	श्रीमती उमरावबाई परमार	मगरतलाब	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति

क्र.सं.	नाम	निवासी	अलंकरण
120.	श्रीमती पुष्पादेवी पीपाड़ा	विरमावल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
121.	श्रीमती लक्ष्मीदेवी बाफना	सुजानगढ़	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
122.	श्रीमती जस्सीदेवी बैंगानी	बीदासर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
123.	श्रीमती झणकारदेवी दूगड़	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
124.	श्रीमती लक्ष्मीदेवी घीया	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
125.	श्रीमती मोहनीदेवी घीया	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
126.	श्रीमती सुंदरदेवी दूगड़	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
127.	श्रीमती गुलाबदेवी कोठारी	डेगाना	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
128.	श्रीमती रामीदेवी राखेचा	लूणकरणसर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
129.	श्रीमती झंवरीदेवी बोथरा	लूणकरणसर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
130.	श्रीमती मीठूबाई धाकड़	सिसोदा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
131.	श्रीमती गुणीबेन	मावसरी	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
132.	श्रीमती केसरबाई सूर्या	आमेट	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
133.	श्रीमती तीजूदेवी बैंगानी	बीदासर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
134.	श्रीमती किरणदेवी कोठारी	राजनांदगांव	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
135.	श्रीमती शांतादेवी बोथरा	लूणकरणसर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
136.	श्रीमती किरणदेवी पुगलिया	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
137.	श्रीमती पार्वतीदेवी बोथरा	झकनावद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
138.	श्रीमती कंवरीदेवी सुराणा	तारानगर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
139.	श्रीमती कमलादेवी बोहरा	झकनावद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
140.	श्रीमती रायकंवरीदेवी बच्छावत	चाड़वास	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
141.	श्रीमती सुंदरदेवी सिसोदिया	रायपुर-बोराणा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
142.	श्रीमती धनपतिदेवी नाहटा	सिरसा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
143.	श्रीमती केसरदेवी पुगलिया	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
144.	श्रीमती भंवरीदेवी मालू	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
145.	श्रीमती मोहनीदेवी सुराणा	पड़िहारा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
146.	श्रीमती फूलीदेवी नाहर	दीवेर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
147.	श्रीमती पानीदेवी गोलछा	बाड़मेर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
148.	श्रीमती पानादेवी भंडारी	बालोतरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
149.	श्रीमती कानकंवरीदेवी पारख	चूरू	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
150.	स्व. प्रतापबाई सिंघवी	मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
151.	स्व. कमलादेवी आंचलिया	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
152.	स्व. पुष्पादेवी मरोठी	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
153.	स्व. मोहनबाई ढीलीवाल	चित्तौड़गढ़	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
154.	स्व. अणचीदेवी लालानी	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
155.	स्व. लच्छीदेवी कोठारी	ईडवा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति

क्र.सं.	नाम	निवासी	अलंकरण
156.	स्व. कृष्णादेवी सुराणा	पड़िहारा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
157.	स्व. रेशमीदेवी बुरड़	बालोतरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
158.	स्व. गणेशीदेवी कुंडलिया	राजलदेसर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
159.	स्व. भंवरीदेवी बरड़िया	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
160.	स्व. मैनादेवी नाहर	जाणुंदा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
161.	स्व. शांतिदेवी चोपड़ा	पचपदरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
162.	स्व. धापूबाई कोठारी	केलवा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
163.	स्व. मंगलीदेवी छाजेड़	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
164.	स्व. हंजाबाई बोराणा	सेमड़	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
165.	स्व. मायारानी जैन	हांसी	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
166.	स्व. गट्टूदेवी बैद	भीलवाड़ा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
167.	स्व. कंचनदेवी कोठारी	भीलवाड़ा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
168.	स्व. कांतादेवी भंडारी	पेटलावद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
169.	स्व. अमरावदेवी सालेचा	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
170.	स्व. गुलाबकंवर मेहता	जोधपुर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
171.	स्व. संपतदेवी चोपड़ा	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
172.	स्व. मुलतानीदेवी कुहाड़	मोमासर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
173.	स्व. गुलाबीदेवी पुगलिया	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
174.	स्व. कमलाबेन मेहता	भुज-कच्छ	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
175.	स्व. मृगादेवी भंसाली	आसाढ़ा-नीमच	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
176.	श्री बच्छराजजी सेठिया	मोमासर	कल्याण मित्र
177.	श्री अमोलकचंदजी सेठिया	श्रीडूंगरगढ़	कल्याण मित्र
178.	श्री संपतमलजी भादानी	श्रीडूंगरगढ़	कल्याण मित्र
179.	श्री सुमेरमलजी डागा	श्रीडूंगरगढ़	कल्याण मित्र
180.	डॉ. बसंतीलालजी बावेल	लावासरदारगढ़	कल्याण मित्र
181.	श्रीमती हंसाबाई कोठारी	अहमदाबाद	कल्याण मित्र
182.	श्री कन्हैयालालजी पटावरी	मोमासर-कोलकाता	कल्याण मित्र
183.	स्व. कृष्णकांतजी कर्णावट	उदयपुर	कल्याण मित्र
184.	स्व. मिलापचंदजी दूगड़	सरदारशहर	कल्याण मित्र
185.	स्व. जेठमलजी महनोत	उदासर	कल्याण मित्र
186.	स्व. माणकचंदजी सांखला	लोहारा	कल्याण मित्र
187.	स्व. संपतरायजी कोचर	राजगढ़	कल्याण मित्र
188.	स्व. पन्नालालजी सुराणा	पड़िहारा	कल्याण मित्र
189.	स्व. विजयचंदजी बोथरा	बीकानेर	कल्याण मित्र
190.	स्व. रामीगसिंहजी नाहर का परिवार	जाणुंदा	कल्याण मित्र
191.	श्री चंपालालजी दूगड़	तिरुकलीकुंद्रम	तपोनिष्ठ श्रावक

क्र.सं.	नाम	निवासी	अलंकरण
192.	श्री बाबूलालजी ढेलड़िया	बालोतरा	तपोनिष्ठ श्रावक
193.	स्व. बच्छराजजी डोसी	सुजानगढ़	तपोनिष्ठ श्रावक
194.	श्रीमती प्यारीबाई सिंघवी	मुम्बई	तपोनिष्ठ श्राविका
195.	स्व. भंवरीदेवी चोपड़ा	गंगाशहर	तपोनिष्ठ श्राविका
196.	स्व. किरणदेवी नाहटा	छापर	तपोनिष्ठ श्राविका
197.	स्व. मथुरादेवी तातेड़	जसोल	तपोनिष्ठ श्राविका
198.	स्व. किरणदेवी सुराणा	सरदारशहर	तपोनिष्ठ श्राविका
199.	स्व. मोहनीदेवी बरड़िया	सरदारशहर	तपोनिष्ठ श्राविका
200.	स्व. लाधूदेवी नवलखा	सरदारशहर	तपोनिष्ठ श्राविका
201.	स्व. नोजादेवी गोठी	श्रीडूंगरगढ़	तपोनिष्ठ श्राविका
202.	श्रीमती सुवदीदेवी बैद	गंगाशहर	तपोनिष्ठ श्राविका
203.	स्व. भंवरीदेवी सुराणा	बीकानेर	तपोनिष्ठ श्राविका
204.	श्रीमती संतोषदेवी बैद	बीदासर	तपोनिष्ठ श्राविका
205.	स्व. चांदतारी जैन	जगराओं	तपोनिष्ठ श्राविका
206.	स्व. जसवंतीदेवी जैन	जगराओं	तपोनिष्ठ श्राविका
207.	स्व. इंदिराबाई चोपड़ा	नंदुरबार	तपोनिष्ठ श्राविका
208.	स्व. कंचनदेवी पुगलिया	श्रीडूंगरगढ़	तपोनिष्ठ श्राविका
209.	स्व. शुभकरणजी सेठिया	मोमासर	महादानी श्रावक
210.	स्व. चुन्नीलालजी श्रीश्रीमाल	दीवेर	महादानी श्रावक
211.	स्व. पानीबाई श्रीश्रीमाल	दीवेर	महादानी श्राविका
212.	श्री रुकमानंदजी मालू	श्रीडूंगरगढ़	शासनभक्त
213.	स्व. मफतभाई दोशी	वाव-सूरत	समाधिनिष्ठ
214.	श्री कमलकुमारजी दूगड़	रतनगढ़-कोलकाता	संघसेवी
215.	श्री कन्हैयालालजी छाजेड़	श्रीडूंगरगढ़	संघसेवी
216.	स्व. लक्ष्मीदेवी बैद	गंगाशहर	संस्कारनिष्ठ श्राविका
217.	श्रीमती सुआदेवी संकलेचा	टापरा	सौम्यमूर्ति
218.	श्री कमलजी सेठिया	सरदारशहर-भुवनेश्वर	श्रद्धानिष्ठ संगायक
219.	स्व. झमकूदेवी भंसाली	जसोल	दृढ़धर्मिणी श्राविका
220.	श्री डालमचंदजी मालू	सुजानगढ़	तत्त्वज्ञ श्रावक

अधिक जानकारी हेतु निम्नलिखित पते एवं फोन नंबरों पर संपर्क कर सकते हैं—

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001

फोन नं. (033) 22357956, 22343598 • फैक्स नं. (033) 22343666, मोबाइल : 9831018291

भंवरलाल सिंघी, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

With best compliments from :

स्व. झुमरमलजी बच्छावत

Deeplok Securities Ltd.

Rajendra Bachhawat
Surendra Bachhawat
Mahendra Bachhawat

"Ideal Plaza"
11/1, Sarat Bose Road, 2nd Floor, South Block
Room No. 207, Kolkata 700020
Tel : 2283 7495, 2283 7496

जैन भारती, जनवरी, 2011 ■ प्रेषण दिनांक 28 दिसंबर, 10
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2009-2011

प्रसन्नता जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है
- आचार्य महाप्रज्ञ
TATER FOUNDATION
Charitable Trust

भंवरलाल ख्यालीलाल पारस
जितेन्द्र तातेड़

108, Sapphire Arcade, M.G. Road,
Ghatkopar (East) Mumbai 77
Phone : 022 67554509, 32940139
Email: taterfoundation@gmail.com

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।